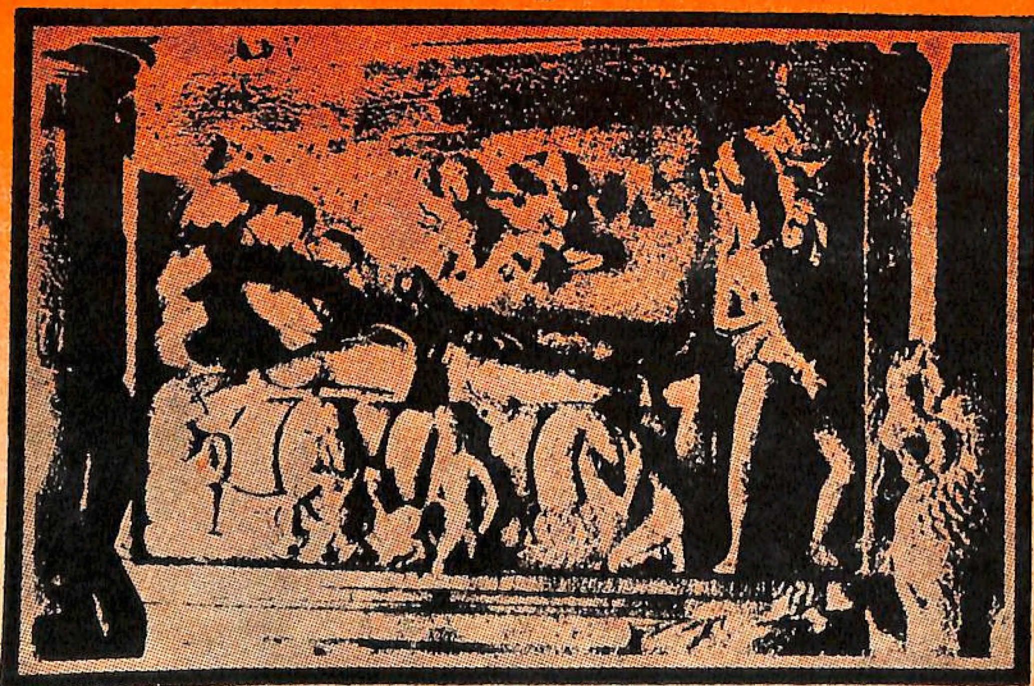
भक्ति की प्रारम्भिक कृति

मुकुन्दमाला

डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ



विगत सहस्राब्दि के इतिहास में राष्ट्राकाश को अधिकतम ज्योति प्रदान करने वाला नक्षत्र 'भक्ति' ही रहा है। ······व्यापकता रचनात्मकता और ऊर्ध्वगामिता—ये तीनों भक्ति के स्वभाव के अंग हैं।······भक्ति का मार्ग निर्माण का मार्ग है, ध्वंस का नहीं, और भक्ति का एक मात्र लक्ष्य मन को मुक्त करके मानव-मात्र को 'महा-मानव' अथवा 'यथार्थ मानव' बना देना है।

नवीं शती की भक्ति-रचना 'मुकुन्दमाला' का एक विशिष्ट महत्त्व है। समस्त आळ्वार वैष्णव-भक्ति साहित्य तमिल भाषा में रचा गया। इन बारह आळ्वार कवियों में से एक कुलशेखर आळ्वार ने मात्र एक कृति संस्कृत में प्रस्तुत की। इसका उल्लेख अनेक संदर्भों में, अनेक विद्वानों ने किया है पर इसका सम्यक् परिचय अथवा विस्तृत विवेचन उपलब्ध नहीं। इसका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध न था। डॉ० रवीन्द्रकुमार सेठ ने इसका हिन्दी अनुवाद तो किया ही है, महत्त्वपूर्ण संदर्भों पर विशिष्ट प्रामाणिक सामग्री भी प्रस्तुत की है। आळ्वार-पूर्व तथा आळ्वार-वैष्णव-साहित्य का संक्षिप्त परिचय तथा कुलशेखर आळ्वार का उनकी दोनों कृतियों 'मुकुन्दमाला' तथा 'पेरुमाळ तिरुमोळि' के आधार पर सम्यक् विवेचन भी प्रस्तुत किया है। 'संतुलित एवं गंभीर विवेचन करने में सक्षम, बाह्य सौंदर्य की उपेक्षा न करते हुए भी रचना के संदेश को अधिक महत्त्व देनेवाले डॉ० सेठ की यह नवीनतम कृति भक्ति-परम्परा के अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगी।' दृश्यमान विविधता के भीतर ओतप्रोत हमारे देशकालव्यापी साहित्य का प्राण और स्वर एक अभिन्न है जो मनुष्य को सामाजिक हित के प्रति निरंतर प्रेरित करता रहता है। डॉ० सेठ ने 'मुकुन्द-माला' के माध्यम से इस कथन को प्रमाणित किया है।

"जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंश प्रदीपः।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः॥"

—मुकुन्दमाला

साहित्य शोध संस्थान

८ ए/१४१, पश्चिमी विस्तार क्षेत्र,
करौल बाग, नई दिल्ली-११०००५

भक्ति की प्रारम्भिक कृति

मुकुन्दमाला



डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ

मूल्य : पचास रुपये (रु० ५०/-)
Colon No. O 15, 1 D 75, 1 : g 152 N 6
DDC No. 891. 211009.
संस्करण : प्रथम संस्करण, १६८६
प्रकाशक : साहित्य शोध संस्थान,
८ए/१४१, पश्चिमी विस्तार क्षेत्र,
करौल बाग, नई दिल्ली-११०००५
मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, विश्वासनगर,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२
आवरण : नरेन्द्र नाथ सेठी, एसोसिएटिड आर्टिस्ट्स, कनाटप्लेस, नई दिल्ली
पुस्तबंध : शाहदरा बुक बाइंडिंग, दिल्ली

MUKUNDMALA : Dr RAVINDER KUMAR SETH
Published by : SAHITYA SHODH SANSTHAN
8A/141, W. E. A. KAROL BAGH
NEW DELHI-110005
PRICE : Rs 50.00

लेखक की ओर से

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के व्यक्तित्व और कृतित्व पर कार्य करना अमृत के सरोवर में उतरकर आनन्द की प्राप्ति करने के समान था। इसके प्रकाशन के उपरान्त मिलने वाले आशीर्वाद और स्नेहपूर्ण सद्भाव ने हृदय को रस-सिक्त कर दिया। परिस्थितियां अनुकूल न रहने पर कुछ समय आगे की योजनाएं कल्पना-मात्र बनी रहीं। 'मुकुन्दमाला' नामक एक लघुकृति को पहले भी एक बार पढ़ा था पर उसमें व्याप्त 'रसतत्त्व' और भक्ति के विशाल अनुभूति-मय उल्लेखों को मैं 'अनुभव' नहीं कर पाया था। तमिल आऴ्वार कवियों के साहित्य का अध्ययन करते-करते एक पंक्ति 'श्री नाथ नारायण वासुदेव गोविन्द दामोदर चक्रपाणे' की खोज ने पुनः 'मुकुन्दमाला' तक पहुंचा दिया। एक प्रकाश-किरण कौंधी कि यदि इस कृति को अनुवाद तथा सम्पूर्ण संदर्भ सहित आधारभूत सामग्री के रूप में हिन्दी जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया जाए तो भक्ति की विशाल परम्परा की एक विशिष्ट प्रारम्भिक कृति, विवेचन-विश्लेषण का विषय बनेगी। 'मुकुन्द' की कृपा से आज यह विचार साकार रूप में परिणत हो गया है।

इस कार्य को करते हुए जीवन की परम्परागत पर चिरनवीन परिभाषा का अनुभव हुआ है। भक्ति की इस कृति द्वारा 'सर्वारम्भपरित्यागी'; 'शुभाशुभ-परित्यागी'; 'समः मानापमानयोः' 'समः सङ्गविवर्जितः' जैसे शब्द अपना रहस्य उजागर करने लगे हैं। वैष्णव भक्ति का पूर्ण आस्थायुक्त समर्पण, 'प्रपत्ति' मानो जीवन का अंग बनने लगता है और सब प्राणियों में मित्र भाव, और सम्पूर्ण जगत् को भगवान् का रूप समझने की विचारधारा का व्यावहारिक रूप भी यत्किंचित् स्पष्ट होने लगता है।

भावमूलक-भक्ति के विषय में श्री रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में कहा है—'गीता और भागवत तथा गीता और रामानुज के बीच की कड़ी ये आऴ्वार संत हैं। भक्ति का दर्शन आऴ्वारों के तमिल प्रबन्धों से

आया है और कदाचित्, भागवत भी उसी प्रबन्धम् से प्रेरित है।'[1] श्रीमद्भागवत-पुराण में भक्ति नामक 'युवती' का कथन दक्षिण भारत को ही 'भक्ति' की जन्म-भूमि सिद्ध करता है—

'उत्पन्ना द्रविड़े साहं वृद्धिं कर्णाटके गता'

जनश्रुति से लोक परम्परा में भी प्रसिद्ध है—

भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखंड॥

दक्षिण में भक्ति के उद्भव के विषय में श्रीमद्भागवत का निम्न प्रमाण भी प्रस्तुत किया जाता है—

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणा॥
क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः॥[2]

कलियुग में द्रविड़देश में जहां ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी, महानदी, प्रतीची आदि नदियां बहती हैं, नारायण के भक्त होंगे।'

इन नदियों के जल के पीने मात्र से अंतःकरण शुद्ध होना और जन-मानस का वासुदेव का भक्त हो जाना इत्यादि किसी विशिष्ट स्थिति का द्योतक है। इसी दक्षिण देश की तमिल-भाषा में उपलब्ध 'नालायिर दिव्य-प्रबन्धम्', जिसमें १२ कवियों के भगवद् प्रेमसागर में डूबकर रचे हुए लगभग चार सहस्र पदों का संग्रह है एक अद्वितीय 'भक्ति-रसामृत सिन्धु' है। ये 'ईश्वरीय प्रेम की मादकता में सरा-बोर भक्त' आळ्वार कहलाये, इनकी कृतियों को वैष्णव-भक्ति की एक विशाल निरंतर चलने वाली दीर्घ-परम्परा में विशिष्ट स्थान मिला। इनमें से पेरियाळ्वार नम्माळ्वार, तिरुमंगैआळ्वार की रचनाएं संख्या में अपेक्षाकृत अधिक थीं परन्तु महत्त्व की दृष्टि से सबको लगभग एक जैसा सम्मान मिला। इनमें आण्डाळ एक-मात्र स्त्री-भक्त थीं। कुलशेखर आळ्वार ने दो कृतियों की रचना की—'पेरुमाळ्

१. पृ०, २६६
२. ११।५।३८-४०

तिरुमोळि' और 'मुकुन्दमाला'। सम्पूर्ण आळ्वार साहित्य तमिल भाषा में है। एक कृति 'मुकुन्दमाला' संस्कृत में रची गई। लगभग पांचवीं से नवीं शती के मध्य रचे गये और नवीं शती में नाथ मुनि द्वारा संपादित आळ्वार-साहित्य में संस्कृत कृति 'मुकुन्दमाला' को स्थान न मिल पाना स्वाभाविक था। परन्तु, प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण प्रसंगों में, भक्ति-साहित्य के संदर्भ में तथा एक उच्चकोटि की कृति के रूप में 'मुकुन्दमाला' को पर्याप्त महत्त्व मिला। उल्लेख मिलता है कि इसमें ४५ श्लोक थे, परन्तु श्री रंगम्, तिरुचिरापल्ली से वाणी-विलास प्रैस द्वारा मुद्रित प्रति में उपलब्ध पूर्ण श्लोकों को अनूदित करके इसे प्रकाशित करना ही उपयुक्त समझा गया। मुद्रित प्रति में परिवर्तन उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। हिन्दी में 'मुकुन्दमाला' का परिचय 'उल्लेख मात्र' के रूप में है। आळ्वार साहित्य पर प्रस्तुत किए गए शोध प्रबन्धों में भी कुछ पंक्तियों में उल्लेख करके दायित्व-निर्वाह कर दिया गया है और उद्धृत श्लोक भी प्रायः एक से ही हैं। अतः यह विचार किया गया कि मूल संस्कृत कृति (वाणी-विलास प्रैस के मुद्रित रूप में यथावत्), हिन्दी अनुवाद, विशिष्ट संदर्भों पर प्रामाणिक व्याख्यात्मक टिप्पणियों आदि के साथ-साथ भक्ति का स्वरूप और कुलशेखर आळ्वार का पूरा परिचय भी प्रस्तुत किया जाए। तमिल-साहित्य की वैष्णव-भक्ति परम्परा को संक्षेप में प्रस्तुत किए बिना यह सामग्री अधूरी प्रतीत हुई अतः उसका समावेश भी आवश्यक माना गया। आकार में 'लघु' किन्तु क्षमता में महत्त्वपूर्ण इस कृति से 'भक्तिकाल' की पूर्व-परम्परा के कुछ नवीन, प्रामाणिक सकेत प्राप्त किए जा सकते हैं। कुछ विद्वान् इस कृति को कुलशेखर आळ्वार की रचना मानने के पक्ष में नहीं; परन्तु पेरुमाळ् तिरुमोळि और इसका एक साथ अध्ययन करने के उपरान्त इस मत को मानने का कोई आधार नहीं मिला। तमिल साहित्य के इतिहास लेखकों ने प्रायः इसे कुलशेखर आळ्वार की कृति के रूप में ही वर्णित किया है।

इस सम्पूर्ण कार्य के लिए ही नहीं, जीवन के निर्माण के हर सोपान पर, जो गुरु-रूप में अपने गहन, विशाल अनुभव तथा अपार स्नेह द्वारा मेरा मार्ग-दर्शन करते हैं, स्पष्ट संकेत देते हैं, ऐसे डॉ० ओम्प्रकाश के द्वारा पुस्तक की भूमिका प्रस्तुत की गई है। उनका आस्थामूलक जीवन दर्शन, विपत्ति की पराकाष्ठा में भी धैर्य और सतुलन बनाए रखना और भारतीय भाषाओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावात्मक एकता के प्रयास मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। योजना को साकार रूप देने; नियमित, क्रमवद्ध सहयोग देने और अपनी सूक्ष्म विश्लेषण-क्षमता का उपयोग

करते हुए अनुवाद, विषय-विवेचन, आदि को वर्तमान रूप देने के लिए मैं डॉ० देवकन्या आर्य का विशेष आभार मानता हूँ। उन्होंने भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए 'मुकुन्दमाला' का विवेचन भी पुरोवाक् के रूप में देने की कृपा की है। उनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव न था।

अनुवाद, कुलशेखर आळ्वार का परिचय तथा अन्य सामग्री का सम्यक् विवेचन, पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़कर सुधार आदि डॉ० (श्रीमती) रमेश सेठ ने सहज भाव से किया है, उनके सहयोग को शब्दों में बांधना सम्भव नहीं। 'मुकुन्दमाला' को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने में पूरे घर-परिवार में 'कृष्ण' की बाललीला को साकार रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम 'श्वेता' और कला की दृष्टि से सुझाव देकर पुत्री 'स्मिता' ने अपना योगदान किया है। पिता श्री रोशनलाल सेठ का आशीर्वाद मेरा सम्बल है; परिवार के समस्त सदस्य भी अपना स्नेह प्रदान कर शक्ति का संचार करते हैं। इस अवसर पर एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व, एक आसाधारण स्नेही मित्र सुश्री श्रेष्ठा खन्ना का न होना हृदय को कचोटता है; अकस्मात् वैकुण्ठ-लोक को उनका प्रयाण एक अनबूझ पहेली-सी लगता है।

कुलशेखर आळ्वार के कृतित्व का विवेचन करने के लिए शान्ति निकेतन विश्वविद्यालय से डॉ० रामसिंह तोमर द्वारा सम्पादित एवं श्री श्रीनिवास राघवन द्वारा अनूदित 'दिव्य प्रबन्ध' के द्वितीय खंड को आधार बनाया गया है। विभिन्न सन्दर्भों में जिन विद्वानों की कृतियों का उपयोग किया गया है, उनका यथासम्भव उल्लेख कर दिया गया है।

पिछले कुछ वर्षों में साहित्य-साधना को लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में जिन मित्रों का सहयोग मिला है उनमें से एक अपूर्व क्षमतावान व्यक्तित्व, कर्म और आस्था के एक उदाहरण रूप मेरे समक्ष श्री प्रमोद प्रकाश श्रीवास्तव रहे हैं। दिल्ली नगर निगम के आयुक्त के रूप में शान्त भाव से अपने दायित्व को निष्ठा-सहित निर्वाहित करते हुए भी उन्हें प्रभु-भक्ति के साथ निरंतर सम्बद्ध देखा है। प्रभु-भक्ति और सौंदर्य के प्रति आस्था का समावेश मुझे श्री नरेन्द्रनाथ सेठी के व्यक्तित्व में मिला और मैं उनकी क्षमताओं से अत्यन्त प्रभावित हूँ। उनकी कलात्मकता का प्रत्यक्ष कलात्मक प्रमाण पुस्तक के आवरण में विद्यमान है। विभिन्न रूपों में उनके द्वारा दिए गए सहयोग के लिए मैं आभार मानता हूं।

इस कृति को प्रस्तुत करते हुए श्रद्धेय डॉ० सु० शंकरराजू नायुडू का स्मरण हो आना स्वाभाविक है। 'नारायण' से प्रार्थना है कि उन्हें राष्ट्र की सेवा के लिए

दीर्घ, स्वस्थ जीवन दें। डॉ० के० अरुमुहम् अब दिल्ली विश्वविद्यालय से कार्य-निवृत्त होकर मद्रास चले गए हैं, तमिल साहित्य की विशाल निधि से मेरा सम्पर्क उनके माध्यम से ही हुआ है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का आशीर्वाद, उनका सहज ही हमारा हो जाना और हमें अपना बना लेना, वर्णन का विषय नहीं, अंतः-स्फूर्ति और उल्लासयुक्त अनुभूति है। हरदयाल म्युनिसिपल पब्लिक लायब्रेरी के कर्मचारी तो अब जैसे परिवार का ही अंग बन गए हैं, पर हर स्तर पर उनके उत्साहपूर्वक सहयोग का उल्लेख आवश्यक है। मित्र श्री ओम्प्रकाश सचदेव, रूपाभ प्रिंटर्स के श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल तथा उनके सहयोगी कर्मचारियों के प्रयास और सत्परामर्श से मैं लाभान्वित हुआ हूं। तुलीज़ स्क्रीन प्रिंटर्स के श्री कृष्ण तुली ने अत्यन्त स्नेह के साथ स्क्रीन के रंगों से पुस्तक को सज्जित किया है। शाहदरा बुक बांइडिग हाउस के श्री चंद्रमोहन ने पूरे दायित्व के साथ पुस्तक बंध का कार्य किया है। यह 'देवकी पुत्र', 'चक्रायुध', 'गोपीजननाथ', 'दामोदर', 'विष्णु', 'श्रीराम', 'भगवान्', 'मुकुन्द', की ही 'कृति' है, उनकी कृपा से ही इसे रूप, आकार मिला है, संभव है, भक्त-जनों, सहृदय साहित्य-प्रेमी पाठकों के लिए भी यह उपयोगी हो सके।

१८ जनवरी, १९८६

अनुक्रम

मुख पृष्ठ एवं भीतरी पृष्ठ के चित्र

१. मुखपृष्ठ का चित्र महाबलीपुरम् में विद्यमान एक प्राचीन 'अनन्तशायी विष्णु' की प्रस्तर मूर्ति के आधार पर।

२. अंदर के पृष्ठ पर 'शेषशायी विष्णु'; छठी शती, देवगढ़, दशावतार मंदिर से! शेषशायी विष्णु के ऊपर की ओर मयूर पर कार्त्तिकेय, हाथी पर इन्द्र, कमल पर ब्रह्मा, वृषभ पर शिव और पार्वती; निकट ही द्रौपदी तथा पांच पाण्डव खड़े हैं।

अविच्छिन्न एवं अविभाज्य

विगत सहस्राब्दी के इतिहास में राष्ट्राकाश को अधिकतम ज्योति प्रदान करने वाला नक्षत्र 'भक्ति' ही रहा है। कान्यकुब्ज-नरेश हर्षवर्द्धन के सांस्कृतिक आलोक के लुप्त होने पर असंख्य ज्योतियाँ हड़बड़ी में टिमटिमाती हुई दृष्टिगोचर होने लगीं। उनमें से अनेक को आत्मसात् करके और अनेक को विफल करके भक्ति का प्रकाश-स्तम्भ स्थिर बना रहा। शनैः-शनैः भक्ति का रचनात्मक अस्तित्व इतना सुदृढ़ बन गया कि उसको मानव-धर्म का पर्याय ही मान लिया गया। व्यापकता, रचनात्मकता और ऊर्ध्वगामिता – ये तीनों भक्ति के स्वभाव के अंग हैं। भक्ति का किसी के साथ कभी भी विरोध नहीं रहा; प्रत्येक भाव, विचार एवं पद्धति को यथाविधि ग्रहण करके भक्ति ने स्वायत्त कर लिया। इस लवण-सागर में जो भी घुलमिल गया वही लावण्यमय बन गया। भक्ति में दोनों प्रकार की व्यापकता है—भौगोलिक तथा सांस्कृतिक। भारत और बृहत्तर भारत में ही नहीं, समस्त एशिया और यूरेशिया में भी यदि सर्वतोभद्र बिन्दु की खोज की जाय तो सप्त सागरों के ऊपर भक्ति की स्निग्धता तैरती हुई पाई जायगी। विश्वभर के शास्त्र और पुराण अपने निखार के निमित्त भक्ति-सागर में अभिषेक करते हैं। अपनी-अपनी हठवादिता के कारण सम्प्रदायों ने जो द्वेष उत्पन्न किया था उसका प्रक्षालन भक्ति ने ही किया है। भक्ति का मार्ग निर्माण का मार्ग है, ध्वंस का नहीं। और भक्ति का एकमात्र लक्ष्य मन को मुक्त करके मानव मात्र को महामानव अथवा 'यथार्थ मानव' बना देना है।

भक्ति की ऊर्ध्वगामी धारा दक्षिण सागर से उमंगकर उत्तर में हिमालय पर्वत की ओर चली थी, समस्त वन-बीहड़, मरु-बंजर, तराई-मैदान का अभिषेक करती हुई। इसने साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य आदि को ही नहीं, जीवन की सम्पूर्ण बाह्य एवं आन्तरिक अभिव्यक्ति को अपने रंग में रंगकर भव्य एवं मनोहर बना दिया। खान-पान, वेष-भूषा, उत्सव-त्यौहार, घर-आँगन खेत-खलिहान—भक्ति की नवीन सुधा से सिक्त होकर सभी चमचमाने लग गये। जीवन में जहां-जहां मनोज्ञता और सौन्दर्य है वहां कहीं-न-कहीं भक्ति की छाप

भी अंकित मिलेगी ।

भक्ति की सांस्कृतिक यात्रा संस्कृत रथ पर चढ़कर सम्पन्न हुई थी । 'भाषा' के अश्व उस रथ (=संस्कृत) को खींचते थे । इस लम्बी यात्रा में अश्वों (=भाषाओं) को, शिथिल होते हुए ही, बदल दिया जाता था । भक्ति का रथ एकाश्ववाही (एक्का) नहीं था, उसमें दो और कहीं-कहीं दो से अधिक अश्व जुते रहते थे । देश-काल के अनुसार सारथी भी बदलते रहते थे; विशेष भू-भाग से परिचित, विशेष अश्वों को संयत रखने में सक्षम, सारथी लोग भक्ति-रथी को संस्कृत-रथ में आसीन करके सांस्कृतिक यात्रा में ले चलते थे । यह यात्रा आधुनिक काल तक अनवरत गति से चलती रही । अकस्मात् यूरोप से कोई सारथी आया, जिसने स्थानीय अश्वों को अश्वशाला में बन्द करके ताला लगा दिया और अपने नवीन अश्व को जोतकर, कोड़ा फटकारते हुए, समस्त भू-भाग को रौंद डाला । इस यात्रा को देखकर जनता आश्चर्यचकित रह गई । उसने यह जाना ही नहीं कि इस यात्रा की तेजी में उस रथ में से रथी (=भक्ति) तो कहीं गिर ही गये हैं और इसका एकमात्र नवीन अश्व (=अंग्रेजी भाषा) अत्यन्त उद्दण्ड है । यथावसर उस रथ (=संस्कृत) को भी प्राचीनागार में रख दिया गया और केवल एक विदेशी अश्व (=अंग्रेजी) ही शेष रहकर, विजय-वासना के कारण, अपनी टापों से भूतल को क्षत-विक्षत करता हुआ प्रजाजन के मन में आतंक उत्पन्न करता रहा ।

आधुनिक विद्वान् यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि जब अंग्रेज और अंग्रेजी नहीं आई थी तब भी हमारा देश एक और अखंड था, तथा लोकरीति के अनुसार अपवादों को स्वीकार करते हुए भी हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी । हमारी शासन-व्यवस्था आजकल की संघीय प्रणाली के अधिक निकट रही है, उसमें चक्रवर्ती सम्राट् का तो स्थान था परन्तु एकच्छत्र शासन की कामना नहीं थी । अनेकशः स्थानीय भेदों के रहते हुए भी समस्त भारत उपमहाद्वीप एक ही अमृतरस से अभिषिक्त रहता था—इस पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता । अंग्रेजों ने, अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति के माध्यम से, आधुनिकता का घोल पोतकर, भारत को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया है—कहीं सम्प्रदाय के आधार पर, कहीं भाषा के नाम पर, और कहीं लोक-रीति का सहारा लेकर । कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग, अपने संस्कारों की उपेक्षा करके किसी सीमा तक बहक भी गये हैं । परन्तु भारत की 'अनपढ़' जनता आज भी

'लद्दाख से लक्षद्वीप तक' सारे देश को एक और अखंड मानती है।

सम्प्रदायों के आधार पर तो देश का विभाजन ही हो गया। लोक-रीति के सहारे से भारत का एक खंड, पाकिस्तान, पुनः दो भागों में कट गया। हाँ, भाषा के नाम पर अंग्रेजी-नीति के सफल होने से पूर्व ही अंग्रेजों को भाग जाना पड़ा। 'आधुनिक विद्वान्' यह अवश्य सोचते हैं कि यदि अंग्रेजी भी चली गई तो रहा-सहा भारत खड-खंड हो जाएगा। उनका यह विश्वास है कि 'आधुनिक भारत का निर्माण' अंग्रेजों ने किया है— उनकी भाषा, उनकी शिक्षा-प्रणाली, उनकी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था अर्थात् उनकी लीक ही विश्व में भारती की टेक तथा पहचान है। स्वतंत्र भारत देश का सविधान जब बन रहा था तब सार्वजनीन भाषा के प्रश्न पर भी गंभीरता से विचार हुआ और यह स्वीकार कर लिया गया कि "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी" होगी तथा "शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए" उसको समृद्ध किया जायगा। पिछले पैंतीस वर्षों में उस संवैधानिक निर्णय के कारण अनेक सज्जनों को शिरोवेदना से कष्ट होता रहा है। इतना ही नहीं, अंग्रेजी का मोह बढ़ता जा रहा है और बहुत से भविष्य-द्रष्टा अंग्रेजी को तिनके का सहारा मानने लगे हैं।

राजनीतिक नेताओं ने देशवासियों को दो वर्गों में विभक्त कर दिया है— 'हिन्दी वाले' तथा 'हिन्दी विरोधी'। सभी 'हिन्दी-विरोधी' सज्जनों को 'अंग्रेजी वाले' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें से अधिकतर लोग तो अंग्रेजी जानते तक नहीं हैं। हिन्दीवाले वर्ग का सबसे मुख्य दोष यह है कि वह यह समझता है कि उसने अपना अभीष्ट प्राप्त कर लिया है, अब उसे आगे कुछ करना नहीं है। परिणामतः उस वर्ग में अब साधना की गंध नहीं आती, वह सत्साहित्य के निर्माण में पिछड़ता जा रहा है; प्रादेशिक भाषाओं की बात तो दूर रही, उसको संस्कृत भाषा तक का ज्ञान नहीं है, वह दूसरों को दिखा-दिखाकर (प्रायः चिढ़ा-चिढ़ाकर) सुविधाओं का भोग कर रहा है। अंग्रेजी राज्य में जीनेवाले हिन्दी के साहित्यकार संस्कृत के अतिरिक्त एक-दो प्रादेशिक भाषाएं भी जानते थे—उनके साहित्य में उस जानकारी की झलक मिल जाती है। परन्तु स्वतंत्र भारत का हिन्दी साहित्यकार अपने देश से उदासीन रहकर विदेश की ओर (विदेशी साहित्य और भाषा की ओर) उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रहा है। साधना के बिना उपभोग को सुलभ बनाकर सरकार भी उसका संरक्षण कर रही है। सरकार यह जानना नहीं

चाहती कि उसका 'अर्थ' ही समस्त अनर्थ का मूल है; 'जीवन' के स्थान पर पैसे से सींचने के कारण हिन्दी की जड़ें दिन-दिन कमजोर होती चली जा रहीं हैं।

भाषा-संकट की इन दशाब्दियों में (पूरे वर्ग ने तो नहीं, परन्तु) कुछ व्यक्तियों ने व्यक्तिगत साहस का अपूर्व परिचय दिया है। वे इस बात को समझ चुके हैं कि दूसरी भाषाओं की विशेषताओं का लाभ उठाने से हिन्दी की क्षमता में वृद्धि होती है, और यह भी कि हिन्दी के विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रथम तो भारतीय भाषाओं से और फिर कालान्तर में विश्व-भाषाओं से समस्त अमर साहित्य को, प्रामाणिक अनुवाद द्वारा, हिन्दी में सुलभ करा दिया जाय। यदि यह बात सरकार की समझ में आ गई होती तो इस पैंतीस वर्षों के समय में, देश के पचास-साठ विश्वविद्यालयों के (जिनमें एम० ए० के स्तर तक हिन्दी भाषा-साहित्य का शिक्षण होता है) माध्यम से विश्व का समस्त श्रेष्ठ साहित्य हिन्दी माध्यम से प्राप्त हो गया होता और देश की दूसरी भाषाएं उस प्रामाणिक हिन्दी-अनुवाद से अपना अनुवाद कर लेतीं। परन्तु आज वही स्थिति है जो एक शताब्दी पूर्व थी अर्थात् हम केवल अंग्रेजी के माध्यम से विश्व के साथ जुड़ पाते हैं। यहां तक कि तमिलनाडु अथवा तिब्बत के विषय में भी हमको अंग्रेजी ही बतलाती है। अरस्तू, प्लेटो, सुकरात आदि के विचार हम हिन्दी के छात्रों को भी समझाते हैं, परन्तु अंग्रेजी की पुस्तक पढ़कर। विदेशियों के साथ राजनयिक वार्तालाप में भी अंग्रेजी की दलाली हमारे काम आती है। सबसे लज्जास्पद स्थिति वह है जब रूस आदि मित्रराष्ट्रों के अधिकारी हमारे अधिकारियों से विचार-विनिमय करते हुए अपनी भाषा और कभी-कभी टूटी-फूटी हिन्दी बोलते हैं परन्तु हमारे अधिकारी और दुभाषिये अपनी भाषा भी नहीं बोल पाते, केवल अंग्रेजी झाड़ते रहते हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर सबसे सम्मान्य कार्य डॉ० सु० शंकरराजु नायडू ने किया है। पी-एच० डी० उपाधि के निमित्त उन्होंने रामकथा के गायक कम्बन और तुलसी की तुलना की, फिर तमिल और हिन्दी के कई कवियों तथा काव्यों की तुलना करते हुए स्वतंत्र लेख लिखे तथा अनेक भाषण दिये। तदनन्तर डॉ० नायडू की दो युगान्तकारिणी रचनाएं प्रकाशित हुईं—'तिरुक्कुरल' तथा 'शिलप्पदिकारम' के प्रामाणिक हिन्दी-अनुवाद। यह ध्यान दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि 'कम्ब रामायण', 'तिरुक्कुरल' और 'शिलप्पदिकारम' तमिल-साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण कृतियों में से हैं। यह लिखते समय हुए मुझे अत्यधिक हर्ष होता है कि

इन तीनों ग्रन्थों का प्रकाशन मद्रास विश्वविद्यालय ने किया है[1]—उस विश्वविद्यालय ने जिसको अज्ञानवश हिन्दी-विरोध का केन्द्र समझा जाता है। इस क्रम में दूसरा महत्त्वपूर्ण केन्द्र शांतिनिकेतन विश्वविद्यालय बन गया है, जहां से डॉ० रामसिंह तोमर के संपादकत्व में 'नालायिर दिव्यप्रबंधम्' का हिंदी-अनुवाद खंडशः प्रकाशित हो रहा है। 'दिव्य प्रबंधम्' की मान्यता वेद-पुराण के समकक्ष है, यह आळ्वार सन्तों के चार सहस्र पदों का संग्रह है। इस दिव्य ग्रन्थमाला के प्रकाशित हो जाने पर हिन्दीभाषी पाठकों को भी भक्ति के उद्भव का सीधा परिचय प्राप्त हो सकेगा।

भाषा-साहित्य की साधना में दिल्ली विश्वविद्यालय का भी अपना योगदान है। हमारे तीन विद्यार्थियों ने (जो अब कॉलेजों में हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक बन चुके हैं) तमिल-हिन्दी के तुलनात्मक विषयों पर शोध-कार्य किया है और भावी अध्ययन-लेखक के लिए उसी क्षेत्र का वरण कर लिया है। डॉ० (कुमारी) के० ए० जमुना के विषय में यह कहा जा सकता है कि जन्म एवं शिक्षा-दीक्षा दिल्ली में होने पर भी उनकी मातृभाषा तो तमिल ही है और उनका परिवार वैष्णव है, इसलिए पी-एच० डी० उपाधि के निमित्त 'दिव्य प्रबंधम एवं सूरसागर की तुलना' करने के पश्चात भी वे तमिल और हिन्दी साहित्यों के आदान-प्रदान में दत्तचित्त हैं, समय-समय पर उनके लेख तथा पुस्तकों का प्रकाशन होता रहता है। परन्तु डॉ० (श्रीमती) विनीता भल्ला तथा डॉ० रवीन्द्र कुमार सेठ तो ठेठ पंजाबी हैं, तमिल भाषा को सीखकर तमिल-हिन्दी का शोधकार्य सम्पन्न करने के कारण इन दोनों की सराहना करनी ही पड़ेगी। विनीता भल्ला के शोध ग्रन्थ 'शिलप्पदिकारम तथा पद्मावत' का चयन दिल्ली विश्वविद्यालय ने अपनी प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत कर लिया है। रवीन्द्र कुमार सेठ ने शोध-कार्य के निमित्त तिरुवल्लुवर तथा कबीर का तुलनात्मक अध्ययन किया था। ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही उनकी ख्याति फैलने लगी, जिससे आकृष्ट होकर डॉ० सेठ ने तमिल और हिन्दी साहित्यों को एक-दूसरे के निकटतम पहुँचाना ही अपनी साहित्य-साधना का लक्ष्य बना लिया। यहां यह सूचित कर देना आवश्यक प्रतीत

---

१. (क) A Comparative Study of Kamba Ramayana and Tulasi Ramayana (1971)

(ख) तिरुवल्लुवर कृत तिरुक्कुरल, (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) (१९५८)

(ग) (आदि तमिल महाकाव्य) चिलप्पदिहारम (का हिन्दी अनुवाद) (१९७९)

होता है कि इन तीन उत्साही साधकों ने जिस समय अपना शोध-कार्य पूरा किया था उस समय तक तमिल भाषा की सम्बद्ध रचनाओं के हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित नहीं हुए थे।

डॉ० रवीन्द्र कुमार सेठ ने एम० ए० कक्षा एवं परीक्षा के निमित्त हिन्दी, तमिल, और संस्कृत भाषाओं का अध्ययन किया था। पी-एच० डी० उपाधि के निमित्त तिरुवल्लुवर और कबीर की तुलना करके उन्होंने अपने लक्ष्य का निर्धारण कर लिया। शोध-ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर उनकी कीर्ति का प्रसार हुआ। परिणामतः केन्द्रीय सरकार ने उनसे तिरुवल्लुवर पर एक पुस्तक हिन्दी में लिखवाई। जाफना(श्रीलंका) में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय तमिल सम्मेलन एवं गोष्ठी तथा मदुरै में आयोजित विश्व-तमिल-सम्मेलन में डॉ० सेठ को तमिलेतर तमिलसेवियों के प्रतिनिधि के रूप में निमंत्रित किया गया। दोनों त्रिदिवसीय गोष्ठियों में सर्वत्र उनकी चर्चा हुई, तमिल और अंग्रेजी के समाचार-पत्रों ने उनके लेख एवं भाषण को बहुत सम्मान दिया। सुब्रह्मण्य भारती के शताब्दी-वर्ष में राष्ट्रकवि भारती के प्रति साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए डॉ० रवीन्द्र कुमार सेठ ने एक हिन्दी-ग्रन्थ की रचना की जो उस अवसर के उस विषय के तमिल एवं अंग्रेजी ग्रन्थों से भी पूर्व प्रकाशित हो गया था। तमिल एवं हिन्दी के साहित्यकारों की सभा में इस ग्रन्थ का विमोचन उस समय के रक्षामंत्री और वर्तमान उपराष्ट्रपति महामहिम श्री आर० वेंकटरमण ने नई दिल्ली में किया था। उपर्युक्त तीन कृतियों के अतिरिक्त डॉ० सेठ ने संस्कृत वाङ्मय से नीति-वाक्यों का संकलन करके हिन्दी-अनुवाद-सहित उनका संपादन-प्रकाशन 'नीति-मुक्तावली' नाम से किया है। यह रचना साहित्यिक विस्तार के साथ-साथ उनकी अभिरुचि की भी सूचक है, उनके मत में साहित्य का लक्ष्य समाज का नैतिक उत्थान है, मनोविनोद मात्र नहीं। तमिल के भक्ति-साहित्य का मन्थन करते हुए डॉ० सेठ का ध्यान 'मुकन्दमाला' की ओर गया। आळ्वारों की समस्त रचनाएं तमिल भाषा में हैं, परन्तु 'मुकन्दमाला' इसका अपवाद है, कुलशेखर आळ्वार ने इसकी रचना संस्कृत भाषा में की है। तमिल साहित्य के ग्रन्थ-रत्नों की बार-बार परख करने पर डॉ० रवीन्द्र कुमार को लगा कि उनकी विशेषताएं हिन्दी-साहित्य के अध्ययन को अधिक व्यापकता प्रदान कर सकती हैं। इसलिये वे परिचयात्मक-तुलनात्मक पुस्तक की रचना में लग गये, जिसको उन्होंने पूर्ण कर लिया है— शीघ्र ही प्रकाशित भी कर देंगे। संस्कृत, तमिल एवं हिन्दी साहित्य के रसास्वाद

से डॉ० सेठ की रुचि में परिष्कार आया है; उनका विवेचन अधिक संतुलित एवं अधिक गंभीर होता है, बाह्य सौन्दर्य की उपेक्षा न करते हुए भी वे रचना के संदेश को अधिक महत्त्व देते हैं, उनकी साधना साहित्य-समागम की ओर उन्मुख है, उनका यह विश्वास दृढ़तर होता चला जाता है कि दृश्यमान विविधता के भीतर ओत-प्रोत हमारे देशकालव्यापी साहित्य का प्राण और स्वर एक एवं अभिन्न है जो मनुष्य को सामाजिक हित के प्रति निरन्तर प्रेरित करता है। मुझे विश्वास है कि डॉ० रवीन्द्र कुमार सेठ की साहित्य-साधना अन्य साहित्यकारों की प्रेरणा बनेगी और स्थानीय विशेषताओं की रक्षा करते हुए भी हमारा (प्राचीन एवं नवीन, उत्तरी एवं दक्षिणी) साहित्य नित्य अविच्छन्न एवं अविभाज्य बना रहेगा।

कार्तिकी पूर्णिमा
सन् १९८५ ई०

ओमप्रकाश 12/8

एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, डी० लिट्
प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

पुरोवाक्

तमिल के आळ्वार सन्तों में कुलशेखर का एक विशिष्ट स्थान है। इनकी केवल दो ही कृतियां उपलब्ध हैं—पेरुमाळ् तिरुमोळि एवं मुकुन्दमाला। पेरुमाळ् तिरुमोळि कृष्ण एवं रामभक्ति-विषयक तमिल भाषा में रचित कृति है एवं मुकुन्दमाला का सृजन कवि ने संस्कृत भाषा में किया है। मुकुन्दमाला की विशिष्टता है कि यह तमिल कवि द्वारा कृष्णभक्ति के विषय में संस्कृतभाषा में विरचित एकमात्र रचना है। मोनियर विलियम ने कुलशेखर द्वारा निबद्ध एक मुकुन्दमाला का उल्लेख किया है जिसमें उनके अनुसार विष्णु-विषयक केवल २२ श्लोक हैं। प्रस्तुत अध्ययन की विषय इस मुकुन्दमाला में ५४ श्लोक हैं। सम्भवतः मोनियर विलियम को जो मुकुन्दमाला विज्ञात थी उसमें २२ श्लोक होंगे परन्तु किसी अन्य मत के आधार पर सम्पादित वर्तमान उपलब्ध मुकुन्दमाला में ५४ श्लोक हैं। जो भी हो, मुकुन्दमाला अत्यन्त सरस, सरल एवं प्राञ्जल भाषा में विरचित कृष्णभक्ति की एक अनूठी कृति है।

भक्ति का स्वरूप

भक्ति शब्द की निष्पत्ति भज् धातु से, जिसका अर्थ है 'सेवा करना' भाव अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर की जाती है। अतः भक्ति शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है—सेवा। यह सेवा सामान्य सेवा नहीं, यह तो मन, कर्म और वचन से प्रेमपूर्वक सेवाभाव से श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित होना है। इसलिए दास्यभाव भक्ति का अनिवार्य गुण है। प्रभु की सेवा जीव को स्वतः-सिद्ध है क्योंकि जीव वस्तुतः प्रभु से अभिन्न है और इसीलिए प्रभु उसके प्रियतम हैं। प्रिय की सेवा सदैव आनन्द-रूपिणी होती है। इस प्रकार प्रेम या प्रीति भक्ति की दूसरी विशेषता है। प्रायः इसी मूलभूत सिद्धान्त से प्रेरित होकर ही भक्तों द्वारा भक्ति की अनेकों परिभाषाएं दी गई हैं।

शाण्डिल्य और नारद ने, जो कि भक्ति सिद्धान्त के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, प्रेम को भक्ति की अनिवार्य विशेषता कहा है। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे'—अर्थात्

ईश्वर से परम अनुराग ही भक्ति है।[1] 'सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा'—अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।[2]

पतञ्जलि ने योगसूत्र में प्रणिधान—अर्थात् सभी मानसिक एवं कायिक कर्मों का ईश्वर के प्रति समर्पण, को ही भक्ति माना है। व्यास ने 'प्रणिधान' की व्याख्या भक्ति-अर्थ में की है।[3]

भागवतपुराण में भक्ति को प्रभु के प्रति एक सहज प्रवृत्ति के रूप में वर्णित किया गया है और इस रूप में भक्ति को सिद्धि से भी श्रेष्ठ माना है।[4] जैसे गङ्गा के जल का प्रवाह सहज और अबाध गति से सागर की ओर उन्मुख रहता है उसी प्रकार ही भक्ति भगवान् के प्रति मन के भावों की अबाध और निरन्तर गति है।[5] अविवेकी पुरुषों की सांसारिक विषयों के प्रति जो प्रीति है, वही जब ईश्वर के प्रति हो जाती है तो भक्ति कहलाती है।[6] तेल की धारा के सदृश चित्त की भगवान् के प्रति निरन्तर एवं अप्रतिहत प्रवृत्ति ही भक्ति है।[7]

शङ्कराचार्य ने शिवानन्दलहरी में भक्ति का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। यथा बीज अङ्कोल वृक्ष के प्रति, सुई अयस्कान्तमणि (चुम्बक) के प्रति, साध्वी स्त्री अपने पति के प्रति, लता वृक्ष के प्रति और नदी सागर के प्रति सहजभाव से आकृष्ट होकर तन्मुखी होती है, उसी प्रकार भगवान् के चरण-युगल को प्राप्त

---

१. शाण्डिल्यसूत्रम्, १।२
२. नारदभक्तिसूत्राणि, २
३. 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा'—योगसूत्रम् १।२३
प्रणिधानाद् भक्तिविशेषात्—व्यासभाष्यम्, योगसूत्रम्, १।२३
४. सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या।
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी॥
श्रीमद्भागवत महापुराणम्, ३।२५।३२-३३
५. वही, ३।२९ ११-१२
६. या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥ विष्णुपुराणम्, १।२०।१९
७. कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम्।
चेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा॥
देवीभागवतपुराणम्, उत्तरार्द्धम्, ७।३७।२

करके उन्हीं में एकनिष्ठ भाव से स्थित चित्तवृत्ति को ही भक्ति कहते हैं।[1] रामानुजाचार्य भगवान् के स्नेहपूर्वक अनुध्यान को भक्ति मानते हैं।[2] मधुसूदन सरस्वती के अनुसार भगवद्धर्म के निरन्तर श्रवण से द्रवीभूत एवं धारावाहिकता को प्राप्त मानसी वृत्ति ही भक्ति है।[3]

निम्बार्क के अनुसार भक्ति साधन भी है और साध्य भी। यह ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। जो व्यक्ति दया, दैन्यादि गुणों से विशिष्ट है, भगवान् उसी पर अनुग्रह करते हैं।[4]

वल्लभाचार्य ने स्नेहातिरेक को ही भक्ति कहा है। भक्ति द्वारा ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है अन्यथा नहीं।[5] यह भक्ति दो प्रकार की है—मर्यादाभक्ति और पुष्टिभक्ति। शास्त्रों के अनुशीलन से उद्भूत भक्ति मर्यादाभक्ति कहलाती है। इसी को भागवत पुराण में वैधी भक्ति कहा गया है। यह श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, विष्णु के पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रूप से

---

१. अङ्कोलं निजबीजसंततिरयस्कान्तोपलं सूचिका।
साध्वी नैजविभुं लताक्षितिरुहं सिन्धुः सरिद्वल्लभम्॥
प्राप्नोतीह यथा तथा पशुपतेः पादारविन्दद्वयं।
चेतोवृत्तिरुपेत्य तिष्ठति सदा सा भक्तिरित्युच्यते॥

शंकराचार्य, शिवानन्दलहरी, ६१

२. स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते।

रामानुजभाष्य, श्रीमद्भगवद्गीता, ७।१

३. द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

मधुसूदनसरस्वती, भक्तिरसायन, १।३

४. कृपाऽस्य दैन्यादियुजि प्रजायते।
यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा॥
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः।
सा चोत्तमा साधनारूपिका परा॥

निम्बार्काचार्य, वेदान्तकामधेनु, ९

५. स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः तया मुक्तिर्न चान्यथा।

वल्लभाचार्य, तत्त्वार्थदीपः, पृ० ६५

नौ प्रकार की है।[1] भगवान् की कृपा होने पर प्रेम की स्वाभाविक प्रवृत्ति को पुष्टि भक्ति कहते हैं। वैष्णव-दर्शन में इसे रागात्मिका-भक्ति की संज्ञा दी जाती है।[2]

गौडीय वैष्णव दर्शन में ज्ञान-कर्म-वैराग्यनिरपेक्ष, अन्य किसी भी अभिलाषा से रहित, आनुकूल्य भाव से कृष्ण का निरन्तर अनुशीलन ही भक्ति माना गया है।[3]

मुकुन्दमाला में भक्ति

मुकुन्दमाला में कुलशेखर ने भक्ति का कोई सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। मुकुन्दमाला पर किसी एक विशेष सम्प्रदाय का प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता। इस कृति में वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति-विषयक प्रायः सभी दृष्टिकोणों का अन्तर्भाव प्रतिभासित होता है। कमलनयन, कुन्देन्दुशङ्खदशन, शिशुगोपवेष, वृन्दावनवासी वसुदेवपुत्र ही कवि के वन्दनीय हैं।[4] मुकुन्द के विभिन्न नामों का संकीर्तन ही कवि का अभीष्ट है।[5] मुकुन्द के चरणकमलों का जन्मजन्मान्तरों तक स्मरण ही कवि का प्रार्थ्य है।[6] स्वर्ग में हो, नरक में हो, पृथ्वी पर हो अथवा मृत्युकाल में भी कृष्ण के चरणारविन्द का चिन्तन ही कवि का ध्येय है।[7]

मुकुन्दमाला में दास्यभाव से की गई भक्ति की प्रधानता है। कुलशेखर स्वयं

---

१. श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, ७।५।२३

२. कृतिसाध्यसाधनसाध्य भक्तिर्मर्यादाभक्तिः तद्रहितानां भगवदनुग्रहैकप्राप्य-पुष्टिभक्तिः।
वल्लभाचार्य, भक्तिमार्तण्डः, पृ० १५१

३. अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
रूपगोस्वामी, भक्तिरसामृतसिन्धु, १।११

४. मुकुन्दमाला, १

५. वही, २

६. वही, ४

७. वही, ७

को कृष्ण का दास कहते हैं—कृष्णस्य दासोऽस्म्यहम् ।[1]

कवि का मात्र यही प्रार्थ्य है, यही उसके जीवन का साफल्य है एवं यही उस पर भगवान् की अनुकम्पा है कि वे उसे अपने दास के दासानुदास के दास के भी दासानुदास के रूप में स्मरण रखें ।[2] विष्णु परम करुणामय हैं। उनकी भक्त के प्रति वत्सलता के प्रमाण वेदों में भी उपलब्ध होते हैं ।[3] आपत्तिग्रस्त, त्रस्त लोगों के कल्याण के अभिप्राय से विष्णु ने बार-बार अनेकानेक रूप धारण करके पृथ्वी पर अवतरण किया। विष्णु के प्रायः सभी पराक्रम दुष्टों के अत्याचार से पीड़ित व्यक्तियों को त्राण देने के लिए किये गये हैं ।[4] इसीलिए भारतीय धर्म एवं दर्शन में विष्णु की विश्व के पोषक एवं रक्षक के रूप में प्रसिद्धि है। भक्त के दुःख से कातर हो भगवान् उसकी करुण पुकार सुनते ही दौड़े आते हैं। लोक का कष्ट निवारण करने वाले भगवान् क्या अपने दास के कष्टों का हरण नहीं करेंगे ?[5] इसी विश्वास से संसारसागर से अपना उद्धार करने के लिए भक्त दैन्यभाव से प्रार्थना करता है—'हे गोपालक ! हे कृपाजलनिधे ! हे सिन्धुकन्यापते ! हे कंसान्तक ! हे गजेन्द्रकरुणापारीण ! हे माधव ! हे रामानुज ! हे तीनों लोकों के गुरु ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे गोपीजननाथ ! मेरा पालन करो। तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसी अन्य को नहीं जानता।'[6] कवि का प्रभु के प्रति आत्मनिवेदन है—'ऐसे तुम भगवन् ! प्रसन्न होओ। मुझ अनाथ पर हे विष्णु ! कृपा करो। तुम तो परम करुणामय हो। भवसागर में निमग्न मुझ दीन का हे अनन्त ! तुम्हें उद्धार करना चाहिए।'[7]

---

१. मुकुन्दमाला, ४४
२. वही, २६।
३. ऋग्वेद, १।१५५; ६।४६।१३; ७।१००
४. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
   धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥
   श्रीमद्भगवद्गीता, ४।८
५. लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः।
   मुकुन्दमाला, ११
६. मुकुन्दमाला, ४५
७. वही, ५०

सर्वाङ्गीण समर्पण

कृष्ण के प्रति भक्त का सर्वाङ्गीण, सर्वभावेन, सम्पूर्ण समर्पण है। कुलशेखर के अनुसार शीश वही है जो कृष्ण के प्रति प्रणत है, नेत्र वही हैं जो हरि का ही दर्शन करते हैं, बुद्धि वही है जो माधव का ही ध्यान करती है और जिह्वा वही है जो प्रतिपल नारायण की ही स्तुति करती है।[१] इसलिए कवि अपने अंग-प्रत्यंग को सम्बोधित करके कहता है—'हे जिह्वे ! केशव का नामकीर्त्तन करो। हे चित्त ! मुरासुर के शत्रु का भजन करो। हे करद्वय ! श्रीधर की अर्चना करो। हे कर्णयुगल ! अच्युत की कथा का श्रवण करो। हे नेत्रयुग्म ! कृष्ण का दर्शन करो। हे पादद्वय ! हरि के निवास-स्थल को जाओ। हे नासिके ! मुकुन्द के चरणरूपी तुलसी को सूंघो। हे मस्तक ! अधोक्षज के प्रति प्रणत होओ।'[२]

कवि का प्रबल आग्रह है कि विष्णु के प्रति एकनिष्ठ भक्ति ही मनुष्य का उद्धार कर सकती है। इसलिए इस भवसागर से पार उतरने के लिए, जो तृष्णा रूपी जल से आपूरित है, मोहरूपी तरंगों से व्याप्त है, स्त्रीरूपी आवर्त से युक्त है और पुत्ररूपी ग्राहसमूह से संकुलित है, केवल भक्तिरूपी नाव प्रदान करने की ही याचना कवि करता है।[३] संसार के विषयों में आसक्त, भवसागर में डूबते हुए मनुष्यों के लिए केवल विष्णुरूपी जहाज ही एकमात्र शरण है।[४] विवेक के नष्ट हो जाने के कारण मोहरूपी अंधकूप में पतित भक्त के लिए प्रभु का हस्त ही एकमात्र अवलम्बन है।[५] हरि के चरणों के स्मरणरूप अमृत के तुल्य किसी अन्य सुख को भक्त नहीं जानता। हरि रूपी सरोवर में अवगाहन करके भक्त को अपार शान्ति मिलती है। कवि ने एक बहुत ही सुन्दर रूपक बांधा है—हरि वह सरोवर हैं जहाँ उनके चरण एवं हस्त सरोज हैं, उनके नेत्र मीन हैं, भुजाएं लहरें हैं और उनका तेज ही जलराशि है। उस अमृततुल्य जलराशि का पान, भवरूपी मरुस्थल से क्लान्त भक्त को क्लेश से मुक्ति प्रदान करता है।[६]

---

३. मुकुन्दमाला, २०
४. वही, २१
३. वही, १४
४. वही, १२
५. वही, ३७
६. वही, ९

सेवा द्वारा आनन्दरूप भगवान् के निकट आत्मसमर्पण रूप उपासना, अर्चना अथवा वन्दना ही भक्तिभाव एवं भक्तिरस है। भक्त भक्ति के द्वारा साधना के पथ में सिद्धि प्राप्त करके और कुछ कामना नहीं करता। मुकुन्द में भक्ति ही कुलशेखर का एकमात्र कांक्षित धन है। इसी सम्पदा से कवि चिर-सम्पन्न है और मानो मोक्षरूपी राज्य-लक्ष्मी को हथेली पर धारण किये हुए है—"यदि मुकुन्द में आनन्द से घनीभूत प्रगाढ़ भक्ति है तो मानो मोक्षरूपी साम्राज्यलक्ष्मी हथेली पर ग्रहण कर ली।"[1]

भक्ति ही साध्य है और भक्ति ही साधन है।[2] भक्ति ही मनुष्य का परम धर्म है। भागवत पुराण में कहा गया है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥[3]

अर्थात् भगवान् अधोक्षज में अहैतुकी और अबाध भक्ति ही परम धर्म है जिसके द्वारा आत्मा सुप्रसन्न होती है। आत्मा, देह और मन की कामतृप्तिरूप फलाभिसन्धान रहित भक्ति ही अहैतुकी भक्ति है। स्वतः सुख रूप होने के कारण भक्ति किसी अन्य फल की अपेक्षा नहीं रखती। भक्त भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य फल की कामना नहीं करता।

अहैतुकी भक्ति

कुलशेखर की भक्ति श्रीकृष्ण के प्रति इसी प्रकार की निष्काम भाव से 'अहैतुकी' है। कवि सुख-दुःख, राग-द्वेष अथवा जन्म-मरण आदि द्वन्द्वों से मुक्ति पाने के हेतु भगवान् की भक्ति नहीं करता। न ही वह रौरव नरक से त्राण प्राप्त करने के लिए अथवा स्वर्ग की प्राप्ति करके नन्दनवन में सुन्दरी युवतियों के साथ रमण करने के हेतु हरि की भक्ति करता है। वह तो निष्काम भाव से अपने हृदय-

१. मुकुन्दमाला, ५२
२. तुलनीय—कृपास्यदैन्यादियुजि प्रजायते।
यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ॥
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः।
सा चोत्तमा साधनरूपिका परा ॥
निम्बार्काचार्य, वेदान्तकामधेनु, ९
३. श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, १।२।६

भवन में प्रत्येक भाव में हरि को ही भावित करता है।[1]

चतुर्वर्ग अर्थात्—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भी कवि का अभीष्ट नहीं है। न तो धर्म में कवि की आस्था है, न ही धनसञ्चय (अर्थ) करने में और न ही सांसारिक विषय एवं ऐश्वर्य (काम) के उपभोग में। उसे मोक्ष प्राप्त करने की भी अभिलाषा नहीं। भक्त तो पुनः-पुनः जन्म लेना चाहता है और जन्म-जन्मांतरों में भी मुकुन्द के चरणारविन्द में निश्चल भक्ति की कामना करता है।[2]

श्रीकृष्ण – परम तत्त्व

कुलशेखर ने श्रीकृण को परब्रह्म से भी 'पर' माना है। नारदादि मुनिगण 'परात्परं' उस तत्त्व की वन्दना करते हैं।[3] इन्द्र आदि देवतासमूह भी उनके चरण-पीठ की अर्चना करते हैं।[4] कृष्ण का कवि ने भूमारूप में अतीव सुन्दर चित्रण किया है। भूमारूप कृष्ण की कालावधि में सृष्टि के मूलभूत पञ्च तत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश क्रमशः अणु रेणु, जलकणिका, लघुस्फुलिङ्ग, अल्प-सा निःश्वास एवं सुसूक्ष्म रन्ध्र जैसे प्रतीत होते हैं। रुद्र आदि समस्त देवगण क्षुद्र कीटवत् दृष्टि-गोचर होते हैं।[5] ऐसे महान् निरतिशय हैं पुरुषोत्तम कृष्ण। वैष्णव साहित्य में विष्णु और कृष्ण के विराट् और विश्वरूप के अनेक उल्लेख मिलते हैं।[6]

---

१. मुकुन्दमाला, ५
२. वही, ६

तुलनीय—(अ) मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम्॥
श्रीमद्भागवतपुराण, ९।५।६७

(ब) यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम्।
तथा समस्तसिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते॥
बृहन्नारदीयपुराण, ४।४

३. मुकुन्दमाला, ८
४. वही, १
५. वही, १५
६. (i) ऋग्वेद एवं तत्पश्चात् शतपथ ब्राह्मण में विष्णु का विराट् रूप धारण करके सम्पूर्ण सृष्टि को अपने तीन पगों में माप लेने का वर्णन मिलता है।
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
ऋग्वेद, १।२२।१७-१८ और शतपथ ब्राह्मण, १।२।२।१-५

कुलशेखर ने नारायण रूप में कृष्ण की स्तुति की है। नारायण ही परम तत्त्व हैं।[1] कवि नारायण के चरणारविन्द को प्रणाम करता है, नारायण का ही पूजन करता है, नारायण के नाम की आवृत्ति करता है और अविनाशी नारायण-तत्त्व का ही स्मरण करता है।[2] इस अगाध और दुस्तर भवसागर में लिप्त व्यक्तियों के लिए 'ओं नमो नारायणाय' मन्त्र की पुनः-पुनः आवृत्ति ही उनका कल्याण करने में समर्थ है।[3]

भारतीय परम्परा में मणि, मन्त्र और औषधि का प्रभाव अचिन्त्य माना गया है—अचिन्त्यो हि प्रभावो मणिमन्त्रौषधीनाम्। तदनुसार कवि कुलशेखर ने 'गोपाल चूडामणि' को समस्त मणियों में श्रेष्ठ माना है। श्रीकृष्ण को ही अखिल

(ii) महाभारत में भगवद्गीता का उपदेश देते समय कृष्ण ने अर्जुन को अपने विश्वरूप के दर्शन कराये। भगवद्गीता, ११

(iii) महाभारत की अनुगीता में उत्तंक ऋषि को अध्यात्म-तत्त्वज्ञान का उपदेश देते हुए उन्हें अर्जुन को प्रदर्शित विश्वरूप का दर्शन दिया।
महा० आश्व० ५३-५५

(iv) कृष्ण ने अक्रूर को भी विश्वरूप दिखलाया।

(v) हस्तिनापुर के कृष्ण जब दूत बनकर गए और दुर्योधन ने उन्हें बन्दी बनाने का प्रयास किया तब कृष्ण ने जो उग्ररूप धारण किया उसका वर्णन भी विश्वरूप के सदृश है।

(vi) भागवत पुराण में कृष्ण ने अपनी बाललीलाओं में मिट्टी खाकर माँ यशोदा को अपना विश्वरूप दिखाया।
श्रीमद्भागवतपुराणम् १०।८।३६-३९

१. मुकुन्दमाला, २७

२. वही, २८

३. वही, १७ नारायणपरा वेदाः देवाः नारायणाङ्गजाः।
नारायणपराः लोकाः परायणपराः मखाः॥

तुलनीय नारायणपरा योगा नारायणपरं तपः।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः॥
श्रीमद्भागवतपुराणम् २।५।१५-१६

विश्व प्रपञ्च का उद्धारक मन्त्र स्वीकार किया है और श्रीकृष्ण को ही भवभय-विध्वंसक, तीनों लोकों के लिए संजीवनीरूप भक्तों का परम कल्याण करने वाली और श्रेय: को प्राप्त कराने वाली एकमात्र दिव्य औषधि के रूप में वर्णित किया है।[1] कवि कहता है—"हे मनुष्यो ! सुनो। याज्ञवल्क्य जैसे योगज्ञ मुनि जिसे जन्म, मरण और व्याधि का निदान कहते हैं; उस अन्तर्ज्योतिरूप, अपरिमेय, केवल कृष्ण नाम के अमृत का पान करो। इसी परम औषधि का पान आत्यन्तिक निर्वाण प्रदान करा सकता है।"[2]

अत: कृष्ण ही परम आराध्य हैं। एक श्लोक में सभी विभक्तियों का प्रयोग करते हुए कवि ने कृष्ण की स्तुति की है—"तीनों लोकों के गुरु श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें। कृष्ण को सदा प्रणाम करो। कृष्ण के द्वारा समस्त शत्रुओं का विनाश कर दिया गया है। उन श्रीकृष्ण को हमारा प्रणाम। कृष्ण से ही जगत् उत्पन्न है। कृष्ण का मैं दास हूँ। कृष्ण में ही यह अखिल विश्वप्रपञ्च स्थित है। हे कृष्ण ! मेरी रक्षा करो।"[3]

यह जो कृष्ण-कृष्ण वाणी है वह अकेली ही पापियों का उद्धार करने में समर्थ है।[4] कृष्ण में एकनिष्ठ आनन्द-सान्द्र भक्ति ही कृष्ण के परम पद को प्राप्त कराने में समर्थ है।

'मुकुन्दमाला' का लक्ष्य

मुकुन्दमाला में कुलशेखर ने जिस परम पद को प्राप्त करने का वर्णन किया है वह वेद और उपनिषदों में निर्दिष्ट विष्णु के परम पद का सहज ही स्मरण कराता है। कठोपनिषद् में साधक की आध्यात्मिक साधना का अन्तिम श्रेयस् विष्णु का परम पद कहा गया है। ऋग्वेद में विष्णु को त्रिपाद्‌विक्रम के रूप में वर्णित किया है—इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधा निदधे पदम्।[5] अपने तीन पदों में विष्णु ने

---

१. मुकुन्दमाला, ३१, ३२, ३३
२. वही, १६
३. वही, ४४
४. वही, ५२
५. ऋग्वेद, १।२२।१७

सम्पूण विश्व को नाप लिया।[1] दो पग तो मर्त्यलोक में दृष्टिगोचर होते हैं और तीसरा पग मनुष्य की दृष्टि से अतीत उच्चतम परम पद कहलाता है।[2] यही परम पद विष्णु का निवास है। यहाँ मधु का एक उत्स अर्थात् सरोवर है।[3] जहाँ केवल आनन्द ही आनन्द है। प्रत्येक साधक एवं भक्त यहाँ तक पहुँचने की साधना एवं कामना करता है।[4] मुकुन्दमाला का पठन करने वाले मनुष्यों को क्या सम्पूर्ण सौख्य की उपलब्धि नहीं होती? समस्त पापों को क्षीण करके देहधारी जीव विष्णु के उस परम पद को प्रयाण करता है।[5] यहाँ उस आनन्दमय और मधुमय धाम में भक्त आनन्दविभोर होकर रहता है। यही भक्त का परम और चरम काम्य है।

संस्कृत विभाग
जानकी देवी महाविद्यालय,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

---

१. य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको
विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥

ऋग्वेद, १।१५४।३

२. द्वे इदस्य क्रमणे स्वदृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणे ॥

वही, १।१५५।५

३. विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।

वही, १। १५५।५

४. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै।

वही, १।१५४।६

५. मुकुन्दमाला, ५४

तमिल साहित्य में वैष्णव भक्ति का प्रारम्भिक रूप

ज्ञान-आधृत रहस्य-साधना और प्रेम-आधृत रहस्य-साधना में तात्त्विक अन्तर है। यह परम तत्त्व की खोज युगों से निरन्तर चल रही है। उपनिषद् की साधना पद्धति ज्ञान-आधृत है तो आळ्वार संतों की प्रेमा भक्ति पर आधृत। ज्ञान-मार्ग का पथिक ब्रह्म के ब्रह्मरूप का अनुभव करता है; भक्ति-मार्ग का पथिक अपने अंतः-करण में प्रभु की जिस रूप में कल्पना करता है, उसी का साक्षात्कार करता है। ज्ञान में साधक और ब्रह्म लय होते हैं, आळ्वारों की प्रेमाभक्ति में भक्त का अस्तित्व बना रहता है।

पांचरात्र शास्त्र द्वारा प्रतिपादित साधना मार्ग की स्वीकृति आळ्वार संतों के काव्य में अनेकानेक प्रसंगों में उपलब्ध है। पांचरात्रों के अनुसार केवल भक्ति ही इस दुःखमय संसार से जीव को मुक्त कराने का एकमात्र साधन है। भक्तवत्सल भगवान् की अनुग्रह शक्ति इस भवसागर से जीव का उद्धार कर सकती है। 'इस अनुग्रह शक्ति को उद्बुद्ध करने का भक्तों के पास एकमात्र उपाय है—शरणागति, प्रपत्ति, जिसकी शास्त्रीय संज्ञा न्यास है।···यह शरणागति मानसिक भावना है और छः प्रकार की होती है : (१) आनुकूल्यस्य संकल्पः —भगवान् के प्रति सदा अनुकूल बने रहने का संकल्प; (२) प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्—भगवान् के प्रतिकूल भावना तथा चर्चा से दूर रहना (३) रक्षिष्यतीति विश्वासः—भगवान् के रक्षक रूप में प्रबल, अटूट विश्वास; (४) गोप्तृत्व वरणम्—रक्षक होने का विश्वास वास्तविक होना चाहिए; प्रभु को गोप्ता अर्थात् रक्षक के रूप में पूर्णरूपेण स्वीकार करना; (५) आत्मनिक्षेपः —स्वयं को, अपने कर्मों को प्रभु के प्रति निक्षेप कर देना या डाल देना अर्थात् पूर्ण समर्पण। (६) कार्पण्यम्—नितान्त दीनता, पूर्ण दैन्य भाव से प्रभु को अर्पित होना।

आळ्वार साहित्य की पूर्व-परम्परा का स्वरूप

'कृष्ण' अथवा 'विष्णु' की भक्ति के अनेक भावपूर्ण गीत संघ-साहित्य में

उपलब्ध हैं। संघयुगीन 'एट्टुत्तोहै' (आठ काव्यों का संकलन) के एक प्रमुख काव्य 'परिपाडल' में मूलरूप से ७० कविताओं के संकेत हैं, किन्तु उनमें से २२ ही उपलब्ध हैं; इन २२ कविताओं में से भी छः कविताएँ मायोन अर्थात् मायावी विष्णु की भक्ति में गाई गई हैं। इन कविताओं में विष्णु के अनेकानेक गुणों का वर्णन है—"पंचमूल, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच तन्मात्राएं, मन, चित्त, अन्तःकरण, मूल प्रकृति और पुरुष इन पच्चीस तत्त्वों को चारों युगों में अनुसंधान करने का श्रेय तुम ही को प्राप्त है।" "लोहिताक्ष वासुदेव! श्यामाक्ष संकर्षण! सुवर्णकाय प्रद्युम्न! हरितदेही अनिरुद्ध! गोप वधुओं के साथ रासक्रीड़ा करते समय तुम बारम्बार दायें-बायें होते रहे, घटनृत्य के समय तुमने घट उठा लिया। हे हलायुध! तुम चक्रवर्ती हो और सबका रक्षण तुम ही करते हो। किन्तु हम लोगों के लिए तुम अज्ञात तत्त्व बने हुए हो। तुम भक्तों के हृदय में सदा निवास करते हो।" इसी प्रकार कृष्ण के रमणीय पीताम्बर, मणि-मण्डित किरीट, सुरभित माला, गरुड़ युक्त पताका आदि का वर्णन है। उनकी अपार शक्ति का पुनः-पुनः उल्लेख है—'अतः मूल प्रकृति, धर्म, अनादिकाल, आकाश, वायु और तेज तीनों से युक्त सप्तलोक के प्राणी तुम्हारी कुक्षि में हैं। रसना आदि ज्ञानेन्द्रिय तुम हो। शब्द स्पर्शादि के उपभोक्ता भी तुम ही हो। शब्द से ज्ञात आकाश; शब्द-स्पर्श से ज्ञात वायु; शब्द, स्पर्श, रूप से ज्ञात तेज; शब्द-स्पर्श, रूप, रस से ज्ञात अप् और शब्द-स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से ज्ञात पृथ्वी तुम हो'।

'परिपाडल' के एक अन्य पद में विष्णु की महिमा का विस्तार से गुणगान किया गया है—

"हे विष्णो! सहस्त्रफणी शेषनाग तेरे मस्तक पर अलंकृत हैं। लक्ष्मी तुम्हारी छाती पर आसीन है। स्वच्छ शंख के तुल्य शरीर, गजयुक्त पताका का हलायुध और मुरली को धारण किए तुम बलदेव के तुल्य हो।"

"कमल के समान शरीर, नीलोत्पल के समान नेत्र, लक्ष्मी के आसन योग्य वक्षस्थल और उसमें शोभायमान कौस्तुभमणि और पीताम्बर को तुम धारण करते हो। गरुड़ को पताका में धारण करने वाले तुम्हारी महिमा के गाने में वेद भी अवाक् हैं।···" इसी प्रकार, "ब्रह्मज्ञानियों का धर्म और भक्तों की भक्ति तुम हो। सन्मार्ग से भ्रष्ट जनों को सुधारने वाले तुम हो और शत्रुओं को दण्ड भी तुम ही देते हो। आकाश में दृष्टिगोचर सूर्य और चन्द्र तुम हो। पंचमुख परमेश्वर और उसका संहार भी तुम ही हो। वेद, ब्रह्मा और ब्रह्मा का सृष्टि-कार्य तुम हो।

मेघ, आकाश, भूमि और हिमालय तुम हो। समस्त उत्कृष्ट तत्त्वों का आधार भी तुम हो। तुम्हारे समान या तुमसे बड़ा इस विश्व में और कोई नहीं। तुम निरुपम हो। सोने के रंग के चक्र को दक्षिण हस्त में धारण करने वाले तुम ही समस्त प्राणि-जगत् का आदि कारण हो। तुम्हारी महिमा अनन्त है।"

"तुम्हारे समान तुम ही हो। सुवर्ण निर्मित परिधान, गरुड़ पताका, धवल शंख, शत्रु नाशक चक्रायुध, नीलमणि के तुल्य सुन्दर शरीर, अपरिमित यश और शोभन वक्षस्थल ये तुम्हारी विशेषताएँ हैं। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं, हम अपने बन्धु-बान्धव सहित तुमसे शाश्वत भक्ति की याचना करते हैं। अनुग्रह करो।" श्री चन्द्रकान्त ने तद्विषयक प्रचुर सामग्री का संचयन करके अपने प्रसिद्ध लेख 'तमिल के संघकालीन साहित्य में भक्ति के विभिन्न स्वरूप' के अन्तर्गत इस बात के पर्याप्त प्रमाण दिए हैं कि विष्णुभक्ति और शैवभक्ति का प्रचार तमिल प्रदेश में संघकाल में विद्यमान था। विष्णुभक्ति की चर्चा और मन्दिरों की सूचना इस काल के ग्रंथों अहनानूरू, पुरनानूरू, पदिट्रुपत्तु, कलित्तोहै, पेरुम्बाणाट्रुप्पडै, शिरुपाणाट्रुपडै आदि ग्रंथों में उपलब्ध है।[1]

आऴ्वार

तमिल प्रदेश में वैष्णव संत का सामान्य अभिधान 'आऴ्वार' है। 'आऴ्वार' का अर्थ है—'भगवद्भक्ति रस में लीन व्यक्ति,' 'अध्यात्मज्ञान रूपी समुद्र में गहरा गोता लगाने वाला व्यक्ति'। श्री रा० श्री० देशिकन् ने अपनी कृति Grains of Gold में आऴ्वार शब्द का अर्थ किया है—'प्रभु की भक्ति में पूर्णरूपेण लीन', 'ईश्वरीय प्रेम की मादकता में सराबोर भक्त'।[2] आऴ्वार शब्द का अर्थ 'भगवत्प्रेम-सागर में डूबने वाले अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के मूल तत्त्व तक पहुँचकर उसके ध्यान में मग्न रहने वाले हैं।'[3] 'प्रभु प्रेम में मग्न भक्त' प्रायः स्वीकृत अर्थ है। श्री टी०

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखें, भारतीय साहित्य; अप्रैल १९५७

२. The word 'Alvar' has peculiar significance of its own. It means one who has sunk into depths of his existence or one who is lost in a rapturous devotion to the Lord. It is a word quite descriptive of all God intoxicated men."

३. डॉ० ना० सुन्दरम्, यही अर्थ डॉ० मुंशीराम शर्मा द्वारा भी।

बरो तथा एम० बी० एमिनो द्वारा सम्पादित व्युत्पत्तिपरक अर्थकोश के आधार से 'आल्' का अर्थ है—'To sink, plunge, dive, be deep, be absorbed' आळ्वार का अर्थ हुआ—One who is immersed, absorbed(in meditation of the Supreme Being.),—'परमात्मा का साक्षात्कार करके उसके सौलभ्य परत्व गुणों के अनुभव को व्यक्त करने वाले' ये आळ्वार भारतीय चिंतनधारा के आधार स्तम्भों में से माने जाने चाहिए।

पराशर भट्ट ने बारह प्रसिद्ध आळ्वारों का नाम निर्देश अत्यन्त कुशलता से एक पद्य में किया है—

भूतं सरश्च महदाह्वयभट्टनाथ—
श्रीभक्तिसार-कुलशेखर-योगिवाहान्।
भक्ताङ्घ्रिरेणु-परकाल-यतीन्द्रमिश्रान्
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥[1]

नालायिर-दिव्य-प्रबन्धम्

भारतीय वैष्णव-भक्ति-काव्य में आळ्वार-साहित्य 'नालायिर प्रबन्धम्' का अद्वितीय स्थान है। 'आळ्वारों का युग महाकाव्यों की रचना के लिए अनुकूल न था। अत: रामकथा या कृष्णकथा को लेकर महाकाव्य रचने की ओर वे प्रवृत्त नहीं हुए। परन्तु उन्होंने रामावतार और कृष्णावतार के कुछ विशिष्ट प्रसंगों को लेकर असंख्य सरस पद रच डाले। तमिल में महाकाव्य के रूप में 'रामायण' की रचना ११वीं शताब्दी में महाकवि कंबन द्वारा हुई। परन्तु कंबन को भी रामायण लिखने की प्रेरणा आळ्वारों, विशेषत: कुलशेखर आळ्वार के काव्य से मिली। अत: तमिल में राम-कथा के प्रथम गायकों के रूप में भी आळ्वारों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। जहाँ तक कृष्णभक्ति का सम्बन्ध है, 'प्रबन्धम्' ही तमिल का सर्वप्रथम मौलिक काव्य है जिसमें कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का विस्तार और भावपूर्ण वर्णन है।'

आळ्वारों ने तमिल की संघकालीन काव्य-शैलियों और साहित्यिक परंपराओं का सम्यक् निर्वाह अपने काव्य में किया है। भक्ति और माधुर्य-भाव का सम्बन्ध

---

१. भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय, पृ० १७८; यही पद्य विभिन्न विद्वानों ने आधार रूप में उद्धृत किया है और इसकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं।

स्थापित करना एवं लौकिक प्रेम को अलौकिकता के धरातल पर प्रस्तुत करना इन कवियों की मौलिक विशेषताएँ हैं। तमिल की एक विशिष्ट शैली 'पिळ्ळै तमिल' के लिए पेरियाळ्वार का अभूतपूर्व योगदान है। विस्तार सहित सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रूप से बाल-लीलाओं का वर्णन इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।

आळ्वार—भक्ति की सहज सुलभता एवं भक्ति का स्वरूप

आळ्वारों ने अपने जीवन एवं कर्म द्वारा प्रतिपादित किया कि भक्ति का मार्ग सर्वसुलभ है। इसमें ब्राह्मण और शूद्र, पुरुष तथा स्त्री, बालक तथा वृद्ध सबको निर्बाध समान अधिकार है। तमिल प्रदेश में आळ्वार तथा आचार्य दो विशिष्ट वर्ग विकसित होते गए। आळ्वार 'प्रेमी उपासक' थे, 'नारायण के सच्चे प्रेमी उपासक'। स्वयं विष्णु के विशुद्ध प्रेम में लीन और सम्पूर्ण समाज को इसी मार्ग पर अग्रसर करने के लिए निरंतर संलग्न। आचार्य-वर्ग ने तर्क और युक्ति का आश्रय लिया और इसी भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। माया का खण्डन, ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की सरलता का प्रतिपादन उनका मुख्य लक्ष्य रहा। डॉ० बलदेव उपाध्याय के अनुसार—आळ्वार तथा आचार्य—दोनों ही विष्णु भक्ति के जीवंत प्रतिनिधि थे, परन्तु दोनों में एक पार्थक्य है। "आळ्वारों की भक्ति उस पावन सलिला की नैसर्गिक धारा के समान है जो स्वयं उद्वेलित होकर प्रखर गति से बहती जाती है और जो कुछ सामने आता है उसे तुरंत बहाकर अलग फेंक देती है। आचार्यों की भक्ति उस तरंगिणी के समान है जो अपनी सत्ता जमाए रखने के लिए रुकावट डालने वाले विरोधी पदार्थों से लड़ती-झगड़ती आगे बढ़ती है। आळ्वारों के जीवन का एकमात्र आधार था प्रपत्ति; विशुद्ध भक्ति; परन्तु आचार्यों के जीवन का एकमात्र सार था भक्ति तथा कर्म का मंजुल समन्वय। आळ्वार शास्त्र के निष्णात विद्वान् न होकर भक्तिरस से सिक्त थे। आचार्य वेदान्त के पारंगत विद्वान् ही न थे, प्रत्युत तर्क और युक्ति के सहारे प्रतिपक्षियों के मुख-मुद्रण करने वाले बावदूक पंडित थे। आळ्वारों में हृदयपक्ष की प्रबलता थी तो आचार्यों में बुद्धिपक्ष की दृढ़ता थी। यही विभेद दोनों की जीवन-दिशा को परिवर्तन करने वाला मार्मिक अन्तर था।"[१]

प्रभु-सामीप्य रूप मोक्ष को उत्तम मानने वाले इन आळ्वारों की भक्ति पर

१. भागवत सम्प्रदाय, पृ० १८६

विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दास्य-भाव से भगवद्-सेवा ही इनके लिए मोक्ष है। इनके लिए समस्त जगत् और वस्तुएँ भगवान् का शरीर-रूप हैं; सर्वत्र श्रीमन्नारायण ही हैं और केवल उनमें ही आस्था रखनी चाहिए। आचार्य मुंशीराम शर्मा के अनुसार "आळ्वार भक्त का प्रेम सतत, नित्य रूप में रहने वाला है। जब यह प्रेम सघन एवं सान्द्र रूप धारण करता है तब उसकी संज्ञा अनिर्वचनीय हो जाती है। इस प्रगाढ़ प्रेम की अवस्था में भक्त भी मूक और नीरव बन जाता है। यह प्रेम तीन अवस्थाएँ प्राप्त करता है—स्मरण, मूर्च्छा, अनन्त विराम। स्मरण में प्रभु की कृपा से प्राप्त आनन्द की अवस्था का भक्त के हृदय में बार-बार जागरण होता रहता है। मूर्च्छा में भक्त उस आनन्द की स्मृति से आत्मविभोर हो उठता है। अनन्त विराम में उसकी अवस्था एकदम स्तब्ध हो जाती है। उस समय बाह्य रूप से उसमें और जड़ ठूंठ में विशेष अन्तर नहीं रहता।"[1] आचार्य मुंशीराम शर्मा का प्रस्तुत मत आळ्वारों की भक्ति की सघनता और उसकी अनेक सम्भव स्थितियों का आभास तो देता है पर सम्भवतः मूल तमिल-काव्य से प्रत्यक्ष परिचय न होने के कारण उनकी यह दृष्टि उस समय की उपलब्ध सामग्री पर आधृत है। आळ्वारों की भक्ति का स्वरूप इससे निश्चय ही अधिक विस्तृत है। ज्यों-ज्यों हम इनके काव्य के साथ परिचय प्राप्त करते जाएँगे यह स्वरूप स्वतः ही उद्घाटित होता जाएगा।

आळ्वारों की रचनाएँ दीर्घकाल तक स्फुट रूप में ही प्रचलित रहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियों ने अपनी कृतियों को वर्तमान रूप में न तो क्रमबद्ध संगृहीत किया था और सम्भवतः न ही शीर्षक आदि दिए गए थे। भक्ति-मार्ग के इन पथिकों ने तो सहजभाव से काव्य-रचना की, प्रभु का गुणगान उनका लक्ष्य था और संभवतः वे इससे ही संतुष्ट थे। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि सम्पूर्ण रचित आळ्वार साहित्य आज उपलब्ध नहीं, काल के चक्र में अनेक पद नष्ट हो गए होंगे। "नवीं शताब्दी के अन्त में श्री नाथमुनि ने बड़े परिश्रम से इन पदों का संकलन किया और पदकर्ता, विषय तथा छन्द के आधार पर अलग-अलग नाम दिए। आळ्वारों की रचनाओं के संग्रह का नाम तभी से 'दिव्य-प्रबन्धम्' अथवा 'अरुळिचेयल' अर्थात् 'अनुग्रहपूर्ण दान' पड़ा। श्री रामानुजाचार्य के समय में उनके एक शिष्य श्रीरंगमवासी अमुदन ने गुरु रामानुजाचार्य की स्तुति में

१. भक्ति का विकास, पृ० ३६०

तमिल भाषा में एक सौ पद रचे थे जिनको भी 'रामानुज नूट्रान्तादि' के नाम से 'दिव्य प्रबन्धम्' में समाविष्ट किया गया है। इस पूरे संग्रह के पदों की संख्या ४००० के लगभग है। अतः सुविधा के लिए इस पद-संग्रह को 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' अर्थात् 'चार हज़ार पावन पद' की संज्ञा दी गई है।"[१] प्रबन्धम् का सम्पादन करने वाले इन नाथमुनि का जन्म ई० ८२५ में हुआ और वे ९२ वर्ष जीवित रहे, स्पष्ट है कि आळ्वारों का रचनाकाल इससे पूर्व का ही माना जाना चाहिए।

मायोन और नप्पिनै—विष्णु और राधा

आळ्वार साहित्य से सम्बद्ध अपार सामग्री के आधार पर एक महत्त्वपूर्ण संकेत ग्रहण किया जा सकता है—'मायोन' (विष्णु) अथवा कन्नन् (कृष्ण) से सम्बन्धित कथाओं में उनकी प्रधान प्रेमिका 'नप्पिनै' का उल्लेख ! तमिल में जहाँ कहीं भी कन्नन् का वर्णन मिलता है, वहाँ 'नप्पिनै' विद्यमान है। जनसमाज में उनकी प्रेमलीलाओं की कथाओं का प्रचलन था। सम्भव है कि 'मायोन' की "बाल लीलाओं के वासुदेव कृष्ण के साथ मिलने पर गोपाल कृष्ण का रूप स्थिर हुआ, तब 'मायोन' की प्रेमिका 'नप्पिनै' और उन दोनों की प्रेमक्रीड़ाओं का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक स्त्री की कल्पना हुई होगी और उसका नाम बाद में 'राधा' पड़ा होगा। कृष्ण और राधा की जो प्रेमलीलाओं की कथाएँ बाद के संस्कृत ग्रंथों में मिलती हैं, वही कन्नन और नप्पिनै की कथाओं के रूप में प्राचीन तमिल साहित्य में और बाद में आळ्वार साहित्य में मिलती हैं।"[२]

सामाजिक जीवन पर प्रभाव

तमिल प्रदेश की जनता में धार्मिक चिन्तन-प्रक्रिया को ठोस आधार प्रदान कर, नवीन जागरूकता प्रदान करने में आळ्वार संतों का महत्त्व निर्विवाद है। भारी संख्या में मंदिर-निर्माण, भक्ति के पदों का भावविभोर होकर गायन, और

---

१. डॉ० मलिक मोहम्मद

२. आळ्वार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य; डॉ० मलिक मोहम्मद; पृ० ३९

शनैः-शनैः आळ्वार-चिन्तन का जीवन की विभिन्न क्रियाओं के साथ सहज भाव से संयुक्त हो जाना एक असाधारण रूप की विचार-क्रांति कही जा सकती है। 'नालायिर प्रबन्धम्' पर अनेक टीकाएं रची गईं, अनेकानेक भाष्य प्रस्तुत किए गए और मंदिरों में प्रबन्धम् के पदों का गायन दैनिक भक्ति का अनिवार्य अंग बन गया।

दक्षिण भारत में तीन विशिष्ट स्थल हैं जहां आळ्वार-साहित्य के प्रति आस्था के जीवंत प्रमाण उपलब्ध हैं। श्रीरंगम्, तिरुपति और कांचीपुरम् में भगवद्-विग्रहों के जुलूस के अवसर पर 'प्रबन्धम्' के 'इयंपा' खण्ड का पारायण होता है। जनजीवन में जो स्थान वेद को प्राप्त था वही स्थान 'प्रबन्धम्' को मिला और विशिष्ट धार्मिक त्योहारों आदि पर इस 'तमिल-वेद' का पाठ प्रारम्भ हो गया। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि सर्वप्रथम श्रीरंगम् के मंदिर में संस्कृत वेदों के साथ 'प्रबन्धम्' के पाठ का प्रबन्ध तिरुमंगै आळ्वार ने किया; तदुपरान्त नाथमुनि तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ और 'नालायिर प्रबन्धम्' अपने वर्तमान गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित हो गया।

वैष्णव मंदिरों के उत्सव इत्यादि के अतिरिक्त अनेक शुभ अवसरों पर भी 'प्रबन्धम्' के पदों के गायन की प्रथा है। भगवद्विग्रहों के जुलूस के अवसर पर मार्गशीर्ष मास में प्रातःकाल आण्डाळ् की कृति 'तिरुप्पावै' का गायन; आश्विन मास में 'हिंडोला-उत्सव' पर पेरियाळ्वार तथा कुलशेखर आळ्वार के कतिपय पदों का गायन; भगवद्विग्रह के प्रति नैवेद्य अर्पण, उनका स्नान तथा पुष्पों से सज्जित करते समय भी 'प्रबन्धम्' से पदों का नियमित गायन होता है। वास्तव में आळ्वार संतों के काव्य का तमिल-भाषी जनता, विशेषतः वैष्णव भक्तों के जीवन के साथ, इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वह एक अलग विस्तृत अध्ययन का विषय बन सकता है। जीवन-चिंतन, सुख-दुःख, जीवन-घटना-क्रम की प्रत्येक स्थिति, सामाजिक जीवन सब जगह आळ्वारों के गीतों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। विवाह के अवसर पर आळ्वार-गीतों, विशेषतः आण्डाळ् की 'नाच्चियार तिरुमोळि' के कुछ पद अवश्य ही गाए जाते हैं। जीवन की अंतिम यात्रा, अंत्येष्टि के लिए मृत शरीर को ले जाते हुए भी रामानुजनूट्रान्तादि के पदों के गायन की प्रथा है। वैष्णव भक्त की मृत्यु से कुछ समय पूर्व नम्माळ्वार का वह पद गाया जाता है जिसमें उन्होंने अपनी मोक्ष-यात्रा का वर्णन किया है। स्पष्ट है कि तमिल वैष्णव के जीवन के प्रत्येक सोपान को आळ्वार साहित्य प्रभावित करता है।

डॉ० मलिक मोहम्मद के अनुसार, 'वैष्णव भक्ति-भावना के क्रमिक विकास के इतिहास में श्रीमद्भगवद्गीता के पश्चात् आळ्वार भक्तों के 'प्रबन्धम्' का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'प्रबन्धम्' की स्थिति 'गीता' और भागवत' के बीच की है। वास्तव में बदली हुई नई परिस्थितियों में धर्मसाधना के क्षेत्र में वैदिक युग के कर्म-मार्ग की अनुपयुक्तता और उपनिषद्-युग के ज्ञान-मार्ग की दुरूहता के स्थान पर भक्ति-मार्ग को सर्वसुलभ और आकर्षक नवीन रूप देने का श्रेय तमिल-प्रदेश के उन वैष्णव-भक्त आळ्वारों को है, जिनका समय ईसा की पांचवी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक है।' अपने महत्त्वपूर्ण शोधग्रंथ 'वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन' के निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए उन्होंने प्रतिपादित किया है कि 'आळ्वार भक्तों ने वैष्णव भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया और उसे केवल भावानुभूति की वस्तु घोषित कर जनसाधारण तक को साध्य बना दिया। वैष्णव भक्ति के क्षेत्र में पहली बार जन-भाषा का प्रयोग और संगीत का समावेश करके आळ्वार भक्तों ने ऐसे भक्तिमय वातावरण को सर्जित किया था, जिसमें भक्ति-आन्दोलन व्यापक लोकप्रिय जन-आन्दोलन बन सका। आन्दोलन शब्द की यथार्थता की दृष्टि से वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का प्रारम्भ यहीं से माना जाएगा। आज वैष्णव भक्ति का जो स्वरूप है, वह बहुत कुछ उस वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का परिणाम है, जिसका नेतृत्व आळ्वार भक्तों ने किया था। 'प्रबन्धम्' के आकर्षक तत्त्वों ने ही वैष्णव भक्ति आन्दोलन को व्यापक जन-आन्दोलन का लोकप्रिय रूप दिया। इस प्रकार वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रंथ 'प्रबन्धम्' ही ठहरता है।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण भारत में व्याप्त 'भक्ति' का आधार 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' तथा श्रीमद्भागवत पुराण को मानकर भक्ति के ठोस, सुदृढ़ आधार एवं व्यापकता के मूल उत्स का पता चल जाता है।

श्री रामानुजाचार्य ने इन्हीं कवियों के काव्य को आधार बनाकर विभिन्न धर्मों की तुलना में वैष्णव धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की। उनका ब्रह्मसूत्र भाष्य इन्हीं आळ्वार संतों की वाणी को आधार बनाकर रचा गया। कूरत्ताळ्वार और उनके सुपुत्र पराशर-भट्ट द्वारा दिव्य प्रबन्धम् के सारतत्त्व को संस्कृत स्तोत्रों में अनूदित, परिवर्तित किया गया। वैकुण्ठस्तवं, वरदराजस्तवं, सुन्दर बाहुस्तवं, श्रीस्तवं आदि ग्रंथ कूरत्ताळ्वार द्वारा रचे गए तथा रंगराजस्तवं, गुणरत्नकोश की रचना पराशर भट्ट ने की। श्री वेदान्त देसिक ने लगभग चौदहवीं शताब्दी में दिव्य प्रबन्धम् को लोकप्रिय तथा विशिष्ट सम्मान का आधार बनाकर इसे 'दक्षिण वेद' का स्थान

उपलब्ध करवाया।[1]

डॉ० के० ए० जमुना का आळ्वार भक्तों के विषय में प्रस्तुत निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है: 'आळ्वारों ने अपने आराध्य देव विष्णु के विभिन्न अवतारों विशेषकर रामावतार एवं कृष्णावतार की लीलाओं का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। इन दोनों अवतारों में भी आळ्वार विष्णु के लीलावतार कृष्ण की लीलाओं की ओर अधिक आकृष्ट हुए। शुष्क भक्ति तत्त्व के निरूपण के साथ-साथ कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का सरस एवं सजीव वर्णन प्रस्तुत करके आळ्वारों ने उच्च कोटि के कृष्ण-काव्य का निर्माण कर तमिल के कृष्णभक्ति साहित्य को समृद्ध किया। इन वर्णनों में आळ्वारों के भावुक कवि-हृदय का उद्घाटन हुआ है। सभी आळ्वार मूलतः भक्त थे; उनका चरम साध्य भक्ति था।[2] भक्ति के विकास के आधार को प्रमाण सहित विश्लेषित करते हुए डॉ० ओम्प्रकाश का मत है कि 'भक्ति का उद्गम न तो वेद से है और न विदेश से, भक्ति भारतीय है और वेदोत्तर है।' इस विश्वास का आधार डॉ० ओम्प्रकाश के शब्दों में हीं—'इस विश्वास की सचाई यह है कि जिस समय उत्तर भारत अव्यवस्था से क्षत-विक्षत था उस समय सुदूर दक्षिण देश राष्ट्र की स्वास्थ्य-रक्षा की औषधि खोजने में लगा हुआ था और भक्ति उस खोज का एक गोचर प्रमाण है।' इस मत से भी आप सहमत हैं कि सातवीं शती के पश्चात पुनरुत्थान की लहर के मूल में दक्षिण भारत तथा आळ्वारों के साहित्य की पृष्ठभूमि विद्यमान थी। 'आठवीं शती के शंकराचार्य के उपरान्त रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क और वल्लभ आदि सभी आचार्य उनके अद्वैतवाद में अत्याधान करते है और दार्शनिक चिंतन में प्रेमतत्त्व को प्रमुख बनाकर जोड़ देते हैं। ये सभी आचार्य आळ्वारों की सरस रचनाओं से अत्यधिक प्रभावित थे।'[3] इस संदर्भ में देखने पर आळ्वारों के साहित्य का मूल तमिल स्रोतों से सम्यक् परिचय, हिन्दी के माध्यम से उसका विश्लेषण, समस्त भारतीय साहित्य का परिप्रेक्ष्य स्पष्ट करने, पुनर्विवेचन करने तथा इस महान् परम्परा का समस्त राष्ट्र के साहित्य तथा विभिन्न चिंतन पक्षों, कला आदि पर प्रभाव का मूल्यांकन करने में सहायक होगा।

---

१. मीरां और आण्डाळ् का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ० ना० सुन्दरम्, पृ० २२

२. नालायिर दिव्य प्रबन्धम् और सूरसागर में कृष्ण-कथा का स्वरूप; पृ० ६१

३. वही, भूमिका; vi. x.

आळ्वार—संक्षिप्त परिचय

तमिल नाम	संस्कृत नाम	पद संख्या	जन्म स्थान
पोयगै आळ्वार	सरोयोगिन्	१०५	कांचीपुरम् (वेह्का)
भूतत्तु आळ्वार	भूतयोगिन्	१००	महावलीपुरम्, मद्रास (मामल्लपुरम्)
पेयाळ्वार	महायोगिन्	१००	मयिलापुर, मद्रास
तिरुमलिशै आळ्वार	भक्तिसारर्	२१३	तिरुमलिशै
नम्माळ्वार	शठकोप, परांकुशर, मारन	१२९६	आळ्वार तिरुनगरी
मधुरकवि आळ्वार	मधुरकवि	११	तिरुक्कोइलूर
कुलशेखर आळ्वार	कुलशेखर	१०५	वंचिक्कलम्
पेरियाळ्वार	विष्णुचित्त	४७३	श्री विल्लिपुत्तूर
आण्डाळ्	गोदा	१७३	श्री विल्लिपुत्तूर
तोण्डरअडिपोडियाळ्वार	भक्ताङ्घ्रिरेणु	५५	तिरुमण्डङ्कुडि
तिरुप्पाणाळ्वार	योगिवाह	१०	उरैयूर, तिरुचिरापल्ली
तिरुमंगैयाळ्वार	परकाल	१२५३	तिरुवालि निरुनगरी (कुरयैलूर)

दिव्य-प्रबन्ध की विशिष्ट महत्ता को प्रमाणित करने वाले आचार्यों में नाथमुनि, आलबन्दार, रामानुज स्वामी, कूरत्ताळ्वार, पराशर भट्ट, वेदान्त देशिकन, मणवाल मामुनि आदि उल्लेख्य हैं। चौबीस ग्रंथों, और चार हजार पदों का संग्रह नाथमुनि के समय में सम्पादित हुआ। नालायिर दिव्य प्रबन्धम् के अनेकानेक अंशों का संस्कृत श्लोकानुवाद भी हुआ है। 'भागवत सम्प्रदाय' के अंतर्गत पेरियाळ्वार अथवा विष्णुचित्त स्वामी रचित 'पेरियाळ्वार तिरुमोळि्' के छः पद्य उदाहरण के निमित्त प्रस्तुत किए गए हैं। वैष्णव मंदिरों में प्रभु को पुष्पसमर्पण के अवसर पर भाव-विभोर होकर भक्तजन इन पदों का गायन करते हैं। यहां एक पद प्रस्तुत है—

तमिल :

आनिरै मेय्क्क नीपोदि अरुमरुन्दावदरियाय्।
कानहमेल्लाम् तिरिन्दु उनकरियतिरुमेनिवाड।
पानैयिल् पालैप्परुहिप्पत्तादारेल्लाम् शिरिप्प।
तनिलिनियपिराने ! शेण् पहप्पूच्चूट्टवाराय्॥

संस्कृत :

गास्संचारयितुं प्रयासि नहि वेत्स्यात्मप्रभावं हरे !
कान्तारे बहु संचरन् बत ! वपुर्ग्लानिं समासीदसि।
भाण्डे चूषसि दुग्धमित्यह भो मित्रेतरैर्हस्यसे।
पीयूषादपि भोग्यचम्पकसुमं वोढुं समागच्छतात्॥

'हे कृष्ण ! अपने दिव्य शरीर की कोमलता को थोड़ा भी न जानते हुए स्वयं जंगल में गाय चराने के लिए जाते हो। बारंबार घूमने से तुम्हारा सुन्दर मुख अत्यन्त म्लान हो रहा है। घर में रहकर तुम बरतन में रखे हुए दूध को पी जाते हो, इसलिए शत्रु लोग तुम पर हंसते हैं। वे भले हंसें, परन्तु आपकी समस्त चेष्टाएं हमारे आनंद के लिए होती हैं। अमृत से भी अधिक भाग्यशाली कृष्ण, मैं तुम्हारे मस्तक पर चंपक फूल अर्पित कर रहा हूं, उसे धारण करने के लिए तुम आओ।'

यहां आळ्वारों की कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है जिससे कि एक ही दृष्टि में उनके सम्पूर्ण कृतित्व का अनुमान लगाया जा सके। तदुपरान्त कुलशेखर

आळ्वार के चिंतन, उनके काव्य और भक्ति-विषयक दृष्टिकोण का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

पोयगै आळ्वार

मुदल तिरुवंतादि—(अंतादि छंद में विरचित १०० पद) भक्ति, उपदेश, भक्ति-मार्ग की सरलता, विष्णु के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का उल्लेख, बाल-लीलाएं।

भूत्तत्तु आळ्वार

इरंडाम तिरुवंतादि—(अंतादि छंद में विरचित १०० पद) भक्ति-महिमा, शरणागति, वैष्णव मंदिरों की स्तुति, प्रसंग के अनुसार प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण।

पेयाळ्वार

मूण्ड्राम तिरुवंतादि—(अंतादि छंद में विरचित १०० पद) प्रभु-लीला का गान, विष्णु के विभिन्न अवतारों का वर्णन, भक्ति-महिमा, शरणागति का महत्त्व इत्यादि।

तिरुमळिशै आळ्वार

नान्मुखम् तिरुवंतादि— विष्णु के 'नारायण' रूप की महिमा का गायन; जैन, बौद्ध, शैव आदि की तुलना में वैष्णव-भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन।
तिरुच्चन्दविरुत्तम्—वैष्णव-धर्म के विभिन्न सिद्धान्त, दार्शनिक विवेचन, तद्-युगीन सामाजिक प्रथाएं, कृष्ण के विभिन्न रूपों की लीलाओं का गान।

नम्माळ्वार

तिरुवाय्मोळि—वाय्मोळि अर्थात् सत्य; तमिल साहित्य के वेद के लिए प्रयुक्त; संत के मुख से निकली दिव्यवाणी, विभिन्न विषय यथा भक्ति, उपदेश, गुरु-कृपा, शरणागति तथा दार्शनिक विवेचन।
तिरुविरुत्तम्—विरहिणी आत्मा-नायिका की परमात्मा-नायक की कामना, मधुरा भक्ति, लौकिक से अलौकिक की व्यंजना।

तिरुवासिरियम्—प्रभु के साक्षात्कार की आनन्दानुभूति का वर्णन, प्रभु-प्रपत्ति के समक्ष लोक की उपलब्धियों की तुच्छता का प्रतिपादन।
पेरिय तिरुवन्तादि—प्रभु के स्वरूप, गुण, विभूति, भक्ति, शरणागति इत्यादि का वर्णन।

मधुरकवि आळ्वार

कण्णिनुळ् चिरुतांबु—नेत्रों में लघु रस्सी, गुरु-महिमा का प्रतिपादन, श्रेष्ठ-गुरु के गुणों का उल्लेख, भक्ति की आवश्यकता।

कुलशेखर आळ्वार

पेरुमाळ् तिरुमोळि—आत्म-निवेदन; संसार की असारता, बालगोपाल की लीला, कृष्ण की शिशु-लीलाओं से वंचित देवकी का करुण विलाप; राम के लिए कौशल्या का लोरी गाना; राम-वन-गमन प्रसंग, दशरथ-विलाप, संक्षिप्त रामकथा का समावेश।
मुकुन्दमाला (संस्कृत)
मुकुन्दमाला में संसार की नश्वरता, कृष्ण का गुणगान और उसके माध्यम से सत्य का साक्षात्कार करने का प्रयास।

पेरियाळ्वार

'तिरुप्पल्लांडु'—के अन्तर्गत १२ पद वैष्णव-भक्ति की दैनिक पूजा में प्रयुक्त; विष्णु के विभिन्न अवतारों का स्मरण, भगवद् सेवा का संदेश, भक्त द्वारा प्रभु के लिए युगों-युगों की दीर्घायु की 'कामना सहित मंगलाशासन; प्रभु को 'नजर' न लगे' इसके लिए प्रेमी-भक्त के भावुक कथन!
पेरियाळ्वार तिरुमोळि—बालकृष्ण की अनेकानेक चेष्टाओं का मनोहारी वर्णन, वात्सल्य-रस युक्त ये पद 'पिळ्ळै-तमिल' कहे जाते हैं; सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक चित्रण, जन्मोत्सव, गोकुल का हर्ष-उल्लास, यशोदा का लोरी गाना, चंदामामा को बुलाना, माखन-चोरी, गोपियों के साथ नटखट कृष्ण की लीलाएं—यथा दही का मटका लुढ़का देना; गोपियों का कृष्ण पर मोहित होना, मुरली-माधुरी, रास-नृत्य, गोवर्धन-लीला आदि का लोक-गीत शैली में चित्रण।
(तिरुप्पलांडु के १२ पद पेरियाळ्वार तिरुमोळि के अन्तर्गत समाहित हैं।)

आण्डाळ्

तिरुप्पावै—गोपी रूप में मार्गशीर्ष व्रत का विधान, सखियों को प्रातः जगाना, नप्पिनै (राधा) के माध्यम से कृष्ण को जगाना, अभिलाषा-पूर्ति की कामना, ग्राम्य-जीवन का सुन्दर चित्रण, भक्ति-भाव और प्रकृति का रसपूर्ण समावेश ।
नाच्चियार तिरुमोळि—श्रीकृष्ण से साक्षात्कार की कामना, कामदेव वंदना, श्रीकृष्ण के आने पर मान, चीर-हरण, मिलनोपरान्त पुनः मिलन के लिए शकुन-परीक्षा, स्वप्न में देखे गए रंगनाथ के साथ हुए पाणिग्रहण का वर्णन, मेघ-संदेश; विरह की व्याकुलता का मार्मिक विशद वर्णन, कृष्ण से सम्बद्ध वस्तुओं—तुलसी, पीताम्बर, इत्यादि की उत्कट कामना, कृष्ण-संयोग, इस मिलन का सखियों के प्रति वर्णन, वृन्दावन में कृष्ण के साक्षात्कार का उल्लेख ।

तोंडरअडिपोडि आळ्वार

तिरुमाळै—आत्म-निवेदन, दैन्य-भाव-प्रेरित, श्रेष्ठ भक्ति-भावना-युक्त काव्य, शरीर की नश्वरता, भगवद्-भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन ।
तिरुपळ्ळि एळुच्चि—श्री रंगनाथ की महिमा का गुणगान करते हुए सुप्रभात गीतों के माध्यम से प्रातःकाल के आगमन की सूचना, प्रभु से शैया से उठने की प्रार्थना, वैष्णव मंदिरों में प्रातः सुप्रभाती के रूप में प्रयुक्त गीत ।

तिरुप्पाण आळ्वार

अमलनादिप्पिरान्—रंगनाथ के सौंदर्य का नख-शिख वर्णन, विष्णु की लीलाओं का वर्णन, प्रभु का सर्वव्यापकत्व !

तिरुमंगै आळ्वार

पेरिय तिरुमोळि—तमिल, संस्कृत के पारंगत; वैष्णव तीर्थ-स्थलों का विशद वर्णन, विष्णु की अर्चावतार मूर्तियों की स्तुति, आत्म-समर्पण, कृष्ण-कथा के प्रसंगों का उल्लेख, दार्शनिक चिंतन का बाहुल्य, परम्परागत शैली में विरह-निवेदन, मेघ, कोकिल, भ्रमर आदि के माध्यम से संदेश प्रेषण ।
तिरुक्कुरुन्तांडकम्—एकमात्र प्रभु ही 'सहायक छड़ी' के रूप में वर्णित, सांसारिक माया के पाश से मुक्ति की कामना, परमवात्सल्यमय भगवान् की शरण का संदेश,

भगवान् के साक्षात्कार के आनन्द का वर्णन।

तिरुनेड्ंतांडकम्—भवसागर को पार करने के लिए 'सहायक छड़ी' के रूप में भगवद्भक्ति का वर्णन; सांसारिक जीवन की नश्वरता का उल्लेख कर भक्ति-मार्ग द्वारा 'सत्य' का संधान।

तिरुवेलुकूट्रिरुक्कै—आत्म-समर्पण के भाव से युक्त एक दीर्घ पद।

सिरिय तिरुमडल— तमिल-समाज में नायक के त्याग की भावना से प्रेरित 'मडल-अरुदल' का वर्णन, आऴ्वार-भक्त नायिका रूप में प्रभु-प्रेम में प्राणों के उत्सर्ग का उल्लेख करती है। स्वीकृत सामाजिक मान्यता, मर्यादा के अनुसार 'मडल' द्वारा प्राण-त्याग पुरुष का ही क्षेत्र है पर यहां परम्परा की अस्वीकृति भी स्वतः स्पष्ट है। स्वयं को विरहिणी मानकर प्रियतम प्रभु को प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा का भावपूर्ण चित्रण।

पेरिय तिरुमडल—इसका विषय भी 'सिरिय तिरुमडल' से मिलता-जुलता है; यहां प्रणय-रोष में नायिका प्रभु-प्रियतम के अर्चा-रूप में हुए 'गर्व' को चूर करने के लिए 'मडल' पद्धति से प्राण-त्याग का प्रण करती है; भावना के चरम उद्रेक का अनुभव, त्याग की प्रबल कामना इस काव्य को अद्भुत सौंदर्य-युक्त बनाते हैं।

□□

कुलशेखर आळ्वार

कुलशेखर आळ्वार—परिचय

कुलशेखर आळ्वार चेर-सम्राट् दृढ़व्रत के सुपुत्र थे। चेर साम्राज्य की तिरु-विताङ्कूर' नामक रियासत की राजधानी तिरुअनन्तपुरम् के सम्राट् 'पद्मनाभ-दास' नाम से प्रसिद्ध थे। उनके परिवार के रत्न कुलशेखर का तमिल एवं संस्कृत के प्रति सहज, स्वाभाविक आकर्षण था और 'राम' के 'पेरुमाळ्' रूप के प्रति इनके प्रेम के कारण इन्हें 'कुलशेखर पेरुमाळ्' भी कहा जाता है। श्री बलदेव उपाध्याय ने नाभादास जी के भक्तमाल (छप्पय ४४) में वर्णित 'भक्तदास' को कुलशेखर आळ्वार ही माना है। जनश्रुति एवं भक्त परम्परा में यह उल्लेख आया है कि एक बार ये रामायण की कथा सुन रहे थे। 'प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीराम सीता की रक्षा का भार लक्ष्मणजी के ऊपर छोड़कर स्वयं अकेले खरदूषण की विपुल सेना से युद्ध करने जा रहे हैं। व्यास जी ने ज्यों ही यह श्लोक पढ़ा—

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं करिष्यति॥

रामायणीय कथा में कुलशेखर इतने तन्मय हो गए कि उन्होंने अपने सेना-नायक को तुरंत आज्ञा दी कि चलो, हम लोग श्रीराम की सहायता के लिए राक्षसों से युद्ध करें।'[1] व्यास जी ने परिस्थिति की गम्भीरता का अनुमान लगाते हुए तुरन्त कथा का तीव्र गति से विकास किया और आश्वासन दिया कि अकेले श्रीरामचन्द्र ने समग्र सेनाओं को विनष्ट कर दिया, तभी राजा की मनःस्थिति बदली और उन्होंने

---

१. भागवत संप्रदाय, पृ० १९२
(इसी प्रसंग को भक्तमाल में सीताहरण के संदर्भ में राजा द्वारा तलवार तान कर घोड़े को दौड़ाकर समुद्र में डालने का उल्लेख है—
भक्तदास इक भूप श्रवण सीता हर कीनौं।
'मार' 'मार' करि खड्ग बाजि सागर में दीनौं॥)

अपनी सेना को वापिस लौट आने का आदेश दिया। यह कथा प्रायः सभी विद्वानों ने किसी न किसी रूप में उद्धृत की है। इनका रचनाकाल आठवीं शताब्दी का अंतिम चरण और नवीं शती का प्रारम्भ माना जा सकता है। कोल्लि, कोंगु और कूडल प्रदेश के अधिपति के रूप में चेर वंश का काल पल्लव और पांड्य शक्तियों के अपेक्षाकृत दुर्बल होने पर ही सम्भव है।[1] विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाण उनके ८०० ई० के लगभग विद्यमान होने की पुष्टि करते हैं।

रामकथा का नियमित श्रवण करते-करते उनके हृदय में श्री रंगनाथ-दर्शन की तीव्र लालसा हुई। मंत्री-वर्ग का विचार था कि श्री रंगनाथ का यह भक्त दर्शन करने के उपरान्त राज्य के दायित्व से विमुख हो जाएगा अतः उन्होंने उनकी इस इच्छा को कार्यरूप में परिणत होने से रोकने के लिए निरंतर विष्णु-भक्तों का नियमित आगमन प्रारम्भ करवा दिया। भक्तगण के प्रति प्रेम और आदर के कारण कुलशेखर यात्रा स्थगित कर उनका आदर-सत्कार करते। कुछ समय उपरान्त विष्णु-भक्तों का सब ओर बोलबाला हो गया। यह भी मंत्रियों को सहन न हुआ। उन्हें अपमानित करने के लिए एक योजना बनाई गई। राम-अवतार के दिन प्रभु के अभिषेक के लिए मूर्ति से आभूषण उतारे गए। इसी बीच किसी मंत्री ने एक रत्नमाला छुपा दी। रत्नमाला के खो जाने का समाचार राजा तक पहुँचा और मंत्रियों का संदेह भी विष्णुभक्तों पर ही है—ऐसा जान कर कुलशेखर का भक्त-हृदय चीत्कार कर उठा। भक्तों को निर्दोष सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक विषैले कृष्ण-सर्प को बंद घड़े में मंगवाया और यह कह कर कि यदि विष्णु-भक्त निर्दोष हैं तो यह सर्प मुझे न डसे, भरी सभा में उस घड़े में हाथ डाल दिया। उल्लेख मिलता है कि कृष्ण सर्प कुछ क्षण अपना फन फैलाए झूमता रहा और तदुपरान्त वहां से चला गया। राजा के समक्ष मंत्रीगण ने रत्नहार प्रस्तुत किया, भक्तों के निर्दोष होने का प्रमाण मिल गया पर साथ ही कुलशेखर ने राज्य से मुक्त होने का निर्णय भी कर लिया। वे अगले ही दिन अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर श्री रंगनाथ के दर्शन के लिए चल पड़े। उनकी यही आकांक्षा थी कि नील मेघ सदृश, कमल-नयन भगवान् श्री रंगनाथ के दर्शन करूं, उनका नाम संकीर्तन करूं और उनके प्रेम में विभोर होकर जीवन-यापन करूं। यह इच्छा पूर्ण हुई और

---

१. डॉ० आर० जी० भण्डारकर द्वारा इन्हें १२वीं शती में मानना प्रमाणों द्वारा खण्डित हो चुका है।

इन्होंने श्री रंग के शेषशायी, श्री वेंकटाचल, श्री चित्रकूट तथा कण्णपुरम् इत्यादि तीर्थस्थलों में शेष जीवन व्यतीत किया।

कृतित्व

कुलशेखर आऴ्वार की दो रचनाएं उपलब्ध हैं : मुकुन्दमाला एवं पेरुमाळ् तिरुमोऴि। संस्कृत में रचित 'मुकुन्दमाला' वैष्णव भक्ति की अप्रतिम रचना के रूप में विख्यात है, यद्यपि कतिपय विद्वान् इसे कुलशेखर आऴ्वार की रचना नहीं मानते। उनका तर्क है, 'चूंकि कुलशेखर नाम के एक से अधिक राजा केरल में हुए थे इसलिए यह कहना कठिन है कि यह किस कुलशेखर की रचना है।' मुकुन्दमाला को तमिल कुलशेखराऴ्वार की रचना न मानने के सम्बन्ध में श्री पिशारठी का कथन है कि चूंकि तमिल कुलशेखराऴ्वार मुख्यतः रामभक्त थे और 'मुकुन्दमाला' के रचयिता ने केवल कृष्ण की ही स्तुति की है इसलिए यह रचना तमिल आऴ्वार की नहीं हो सकती। पर मुकुन्दमाला का आद्योपान्त अध्ययन करने से पता चलता है कि उसमें श्री कृष्ण की वन्दना के अतिरिक्त राम-वंदना भी है और हमारे आऴ्वार जितने रामभक्त थे, उतने ही कृष्णभक्त भी। 'पेरुमाळ्-तिरुमोऴि तथा 'मुकुन्दमाला' में अनेक स्थलों पर भाव-साम्य दीख पड़ता है। अतः मुकुन्दमाला के तमिल कुलशेखराऴ्वार कृत होने में किंचित भी संदेह नहीं है। इस तर्क से श्री पिशारठी का मत अमान्य सिद्ध होता है। डॉ० के० सी० वरदाचारी के इस मत का उल्लेख डॉ० मलिक मोहम्मद ने अपने ग्रंथ 'आऴ्वार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य' में करते हुए इससे पूर्ण सहमति प्रकट की है। ज्ञातव्य है कि कृष्ण के विभिन्न नामों का परिगणन करते हुए कवि ने कृष्ण को 'श्रीराम' नाम से उल्लिखित किया है। १७वीं शती के टीकाकार राघवानन्द के अनुसार यह मुकुन्दमाला 'मुकुन्द अष्टाक्षर मन्त्र' का सफल प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ है, इन्हीं राघवानन्द की टीका 'मुकुन्दमाला तात्पर्य-दीपिका' द्वारा इसका विस्तृत विश्लेषण किया गया।

मुकुन्दमाला

भाषा की मधुरता तथा भावों की कोमलता में यह मुकुन्दमाला स्तोत्र अद्वितीय माना गया है। एक श्लोक में श्रीकृष्ण की विशिष्ट गुण-सम्पन्नता का आकलन करते हुए दास्य भाव से प्रार्थना है—

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः, कृष्णं नमध्वं सदा,
कृष्णेनाखिलशत्रवो विनिहताः, कृष्णाय तस्मै नमः।
कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं, कृष्णस्य दासोऽस्म्यहम्,
कृष्णे तिष्ठति विश्वमेतदखिलं, हे कृष्ण रक्षस्व माम्॥[1]

तीनों लोकों के गुरु श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें। श्रीकृष्ण को सदा नमस्कार करो। श्रीकृष्ण ने सब शत्रुओं को विनष्ट कर दिया है—उन श्रीकृष्ण को हमारा प्रणाम है। कृष्ण से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं कृष्ण का दास हूं। यह सम्पूर्ण विश्व कृष्ण में स्थित है। हे कृष्ण ! मेरी रक्षा करो।' इस श्लोक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें कृष्ण शब्द के विभिन्न रूपों और श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति व्यक्त करते हुए आठों विभक्तियों के रूप समझाए गए हैं।

एक अन्य श्लोक में कवि-कथन है—श्रीकृष्ण के चरण कमलों से मेरा चित्त क्षणभर के लिए भी विरत नहीं होता। चाहे प्रिय बन्धु निन्दा करें, गुरुजन मुझे स्वीकार करें अथवा परित्याग कर दें; मनुष्य परिवाद की घोषणा करें अथवा वंश में कलंक हो; मुझ पागल का तो अब प्रेमास्पद श्रीकृष्ण में ऐसा अनुराग है।[2]

पेरुमाळ् तिरुमोळि

तमिल में रचित पेरुमाळ् तिरुमोळि १०५ पदों की एक श्रेष्ठ कृति है। प्रथम पांच दशक आत्म-निवेदनपरक हैं। शेष में जीवन की असारता, प्रभु के प्रति भक्त का दैन्य एवं बाल-गोपाल की लीलाओं का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त कृष्ण की बाल-लीलाओं से वंचित देवकी का करुण विलाप, कवि द्वारा दशरथ-पुत्र राम को लोरी गाकर सुलाना तथा संक्षिप्त रामकथा का वर्णन है। राम के विषय में कवि ने जिन संदर्भों और विशेषणों का प्रयोग किया है उनसे रामकथा तथा राम के जीवन की अंतरंग घटनाओं के परिचय की सूचना मिलती है। 'कोदण्डधारी'-'कोदण्ड धारण किए हुए राघव'; 'अपनी विमाता (सिट्रावै) के वचन को मानने वाले;' 'महाविष्णु के अवतार', 'केवल चट्टानों द्वारा सेतुबंध बनाकर श्रीलंका जाकर उसे नष्ट करने वाले;' 'समुद्र-मंथन करके देवताओं को अमृत प्रदान करने वाले'; 'भरत को राज्य प्रदान कर छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वनगमन करने वाले'

---

१. मुकुन्दमाला, ४४
२. वही, ४३

राम का वर्णन करते हुए कवि ने सहज ही अपनी विचारधारा का परिचय दे दिया है। पेरुमाळ् तिरुमोळि में कवि अपनी अभूतपूर्वक कल्पना शक्ति-द्वारा शब्द-चित्र अथवा स्वगत-चिंतन के माध्यम से पात्रों के हृदय की उथल-पुथल का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। पालने में झूल रहे राम के लिए लोरी गाना (तालाट्टु) सहृदय को उसी प्रकार आनन्द प्रदान करता है जिस प्रकार तुलसी अथवा सूर की तद्विषयक कृतियां हिन्दी पाठक को अभिभूत करती हैं। सर्व-व्यापक, सर्वनियन्ता प्रभु के प्रति लोरी का गायन श्रोता अथवा पाठक के हृदय को वात्सल्य से भर देता है। इसी शैली में रचित एक लोरी उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है जो अपनी स्वर-लहरियों द्वारा मन को उल्लसित करने में सक्षम एवं संगीतात्मकता से युक्त है। शौरिराजन (तिरुकण्णपुरम् के देवता) को राम रूप में सम्बोधित करते हुए कहते हैं—मां कौशल्या के गर्भरत्न, दक्षिण-स्थित लंका के राजा के मुकुट को पतित करने वाले, स्वर्ण के कलश से सज्जित, प्राकार-युक्त तिरु-कण्णपुरम् के आंखों के तारे, तुम मेरे लिए दिव्य अमृत हो—हे राघव, सो जाओ ![1] एक अन्य पद में कवि कथन है—

एङ्गल् कुलत्तिन्नमुदे,
इराघवने ! तालेलो ।[2]

हमारे कुल के दिव्य अमृत, हे राघव, सो जाओ !
कवि क्षत्रिय वंश का है और संभवतः सूर्यवंशी है, यह संकेत इस पद से उपलब्ध होता है।

अबोध बालक के प्रति प्रेम निःस्वार्थ एवं सहज होता है। इस प्रकार के वर्णन

१. मन्नु पुहळ कौशलै तन,
मणि वयिरु वाय्त्तवने
तेन्निलंक्कै कोन् मुडिहल्
सिन्दुवित्ताय सेम्पोन्सेर्
कन्निनन्मा मदिल् पुडैचूष
कणपुरत्तेन् करुमणिये
एन्नुडैय इन्नमुदे
इराघवने ! तालेलो !
पेरुमाळ् तिरुमोळि, ८.१

२. वही; ८.३

में कविता की स्वाभाविकता एक विशिष्ट क्षमता में परिवर्तित हो जाती है। कुलशेखर ने तालाट्टु शैली में रामकथा की विभिन्न घटनाओं यथा ताड़का-वध, राम-सीता स्वयंवर, कैकेयी के वचनों के आधार पर राम-लक्ष्मण-सीता का वन-गमन, भरत को राज्य सौंपा जाना, राम द्वारा लंका-विजय इत्यादि प्रसंगों का उल्लेख किया है। वात्सल्य भक्ति के श्रेष्ठ उदाहरण होने के साथ-साथ रामकथा की यह सामग्री संभवतः कम्ब-रामायण की पूर्व पीठिका प्रस्तुत करने में उपादेय रही।

रामकथा-दशरथ के हृदय की पीड़ा के माध्यम से

कुलशेखर आळ्वार के समक्ष अन्तर्कथाओं सहित रामकथा के प्रायः सभी प्रसङ्ग उजागर हैं। 'कौशल्या के मणि-उदर में निवास करने वाले'; 'दृढ़ पराक्रम-युक्त ताड़का का वध करने वाले'; 'जनक के श्री दामाद'; 'दशरथ के उत्तम बालक'; 'मैथिली के दूल्हा' (मैतिलि तन् मणवाळा !) 'भरत को वैभव-युक्त शासन प्रदान करने वाले'; 'लक्ष्मण के सग दुर्गम वन में विचरण करने वाले'; 'छोटी माता के वचन का आदर करने वाले'; 'चट्टानों से सेतु बांधकर प्राकार सहित लंका का विनाश करने वाले' इत्यादि कथन कवि की रामकथा की जानकारी का परिचय तो देते ही हैं साथ ही लोकगीत शैली में प्रस्तुत होने के कारण इनकी संगीतात्मकता सहज ही हृदय को बांध लेती है। विशिष्ट उच्चारण द्वारा बच्चे को सुलाने के लिए जो मधुर ध्वनि की जाती है वही 'तालो' अथवा 'तालेलो' के नाम से तमिल में लोरी का पर्याय है। 'मन्नुपुहळ्' शीर्षक के अन्तर्गत आये दस पदों में इसी शैली का प्रयोग है।

उपर्युक्त रामकथा के संकेत पेरुमाळ् तिरुमोळि के नवम और दशम दशकों में विस्तार ग्रहण करते हैं। एक पद में उल्लेख है—'तुम्हारे प्रबल चरणयुगल की प्रणति कर, समृद्ध नगर, तुम्हारी पूजा कर, स्तुति करने को था और तुम राजा बनने को थे। सिंहासन पर विराजित तुम्हें देख, 'गहन कानन से (गहन) कानन जाओ' (कैकेयी) बोली। हमारे राम ! ओह ! तुम्हारी माता कैकेयी के वचन सुन मैंने बहुत ही अच्छी तरह इस धरती का शासन तुमसे करवाया। मेरे श्रेष्ठ पुत्र ! दशरथ का यह विलाप दस पदों में क्रमशः विकास प्राप्त करता है। दशरथ के नेत्रों के समक्ष एक और बिम्ब उभरता है—'घृत से लिप्त भाले के समान दीर्घनयन तथा सुन्दर आभरणवाली सीता और तरुण राजकुमार राम के पीछे वन की ओर

जा रहे हैं'। 'कौशल्या के कुल-शिशु'; 'झुके धनुष को धारण करने वाले' एवं 'मल्लों से भिड़ने वाले पर्वततुल्य' राम जो कोमलशय्या पर सोते थे अब 'विपुल कानन की तरु की छाया में शिला-शय्या पर' शयन करते हैं। राम मृगों से युक्त वन में जा रहे हैं और मेरा मन टूक-टूक न होकर स्थिर है, कैसी विचित्र रीति है! दशरथ के हृदय की पीड़ा का चित्रण करते हुए कवि कथन है—

"शत्रुओं के हाथ के भाले के सदृश कंकड़ों के चुभते, कोमल चरणों से रुधिर बहते, अवांछित कानन की वांछा कर, धूप के तपाते, और असह्य भूख रूपी व्याधि के बढ़ते, आज, मुझ महापापी के पुत्र! तुम जाते हो!" दशरथ के हृदय को आघात पहुंचाने में राम का वियोग कितना प्रभावोत्पादक है, कितना मार्मिक है, यह कुलशेखर के इन 'वन ताळ् इणै' पदों में कई रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। न तो राम अब 'तात' कहकर स्नेहपूर्ण वचन कहते हैं, न ही दशरथ आभरण-भूषित राम को अपने वक्ष के साथ लगा कर आलिंगन कर पाते हैं; न चुम्बन, न शीश सूंघना सम्भव है और न ही मदमत्त हाथी के समान राम के मंद-गमन का अनुभव हो पाता है। उस कमल-तुल्य मुख (कमलम् पोल्मुहमुम्) के दर्शन के अभाव में भी अपने प्रभु, अपने पुत्र को खो देने वाले दशरथ की 'पीड़ा' कुलशेखर ने ही जानी है। राम-वनगमन का प्रसंग उन्हें परशुधर के प्रसंग का स्मरण दिलाता है। राम ने तो स्वयं को, स्व-उत्कर्ष को तथा अपनी माता की पीड़ा को कुछ न समझकर मुझे और मेरे सत्यवचन को ही सत्य मानकर वन में प्रवेश किया।' इन पदों के सम्बन्ध में डॉ० मलिक मोहम्मद का कथन है—'कुलशेखर का 'दशरथ-विलाप' नामक दशक भक्ति-काव्य क्षेत्र में बेजोड़ है। कवि ने प्रिय पुत्र के वन-गमन पर चक्रवर्ती दशरथ के मन में उठने वाली विभिन्न भाव-तरंगों को लहराया है और उनका सजीव चित्र दर्शाया है···प्रत्येक पद में कवि का कोमल हृदय राम-वन-गमन के असह्य दुःख का स्मरण कर रो उठता है, करुण क्रन्दन करता है।'

इस दशक का एक पद है—'मधु-स्यन्दि उत्तम पुष्पों से अलंकृत कौशल्या और सुमित्रा जिससे चित्त में पीड़ित हुईं, कूबड़ रूप वाली निर्दय दासी के वचन सुननेवाली क्रूर (कैकेयी) के वचन का आदर कर' जिस प्रकार तुम (मनु के कुल वालों के महाराज) समृद्ध अयोध्या नगर को त्याग कर वन (कानकम्) जा रहे हो उसी प्रकार मैं भी इस नगर को छोड़कर आकाशलोक(वानकम्)जा रहा हूं। 'श्यामल सर्वेश्वर राम' के वन-गमन को सहन कर पाने में असमर्थ दशरथ के इस विलाप का यह अभूतपूर्व चित्रण तमिल साहित्य की निधि है। डॉ० के० सी० वरदाचारी

ने दशरथ की मनोव्यथा एवं राम की शक्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है—"This revealed another great quality of his son, the absolute, unperturbed act of renunciation. The sad end of Dasratha was envisaged in this deep tenderness of God. The visible tears now turn red, blood red, each one of them as it were reflecting the sores on the feet of the Lord walking barefooted in the jungles." दशरथ के अश्रु और राम के चरणों में पड़ने वाले छालों का यह अद्भुत साम्य भक्त के हृदय की पीड़ा का कितना मार्मिक चित्रण है ! 'कर्म' का प्रभाव दशरथ के हृदय को विदग्ध करता है, अकिंचनता, कार्पण्य की यह मनःस्थिति एक भाव से दूसरे भाव तक, एक पद से दूसरे पद तक, निरन्तर बनी है। 'इष्ट' का स्मरण क्षण भर के लिए भी विस्मृत नहीं होता। 'लक्ष्य' राम के प्रति दशरथ का यह प्रबल मोह, स्नेह, लालसा, प्रेम, कुछ भी कहें—कुलशेखर आळ्वार के इस दशक में भावना की अनन्यता, आत्मा की पूर्णरूपेण समर्पण भावना का आधार बन कर आया है।

रामकथा—विहंगम दृश्यावली

पेरुमाळ् तिरुमोळि के दशम दशक में रामकथा का वर्णन कुलशेखर की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की क्षमता और विशाल कथा को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की योग्यता का परिचायक है। 'सुन्दर विशाल उन्नत प्राचीरों से चारों ओर परिवृत्त अयोध्या नामक सुन्दर नगर में सब लोकों को प्रकाशित करने वाली ज्योति'; 'सूर्यवंशी राम का अवतार'; 'ताड़का को शक्तिशाली बाण द्वारा नष्ट करना'; 'मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा'; प्रबल बलशाली सुबाहु आदि राक्षसों का प्राण-नाश करने का पराक्रम प्रथम दो पदों में वर्णित है। तृतीय पद में लाल डोरों से युक्त 'उत्तम-नील-दीर्घ-नेत्र वाली सीता' के लिए, रुद्र के धनुष का भंग कर परशुराम के कठिन सुन्दर उत्तम धनुष' को ग्रहण कर, विजय प्राप्त कर, उनका दमन करने वाले राम का गुणगान है। इस प्रसंग में मुकुन्दमाला के एक श्लोक से भावसाम्य रखने वाली पंक्ति द्रष्टव्य है—'सुन्दर प्रबल धनुष से शोभित दीर्घ भुज वाले श्रीराम को प्रणति करने वालों के चरण-युगल ही की मैंने प्रणति की।'

इसके अनन्तर कथा विकास प्राप्त करती है और एक पद में कैकेयी के वचन के कारण अयोध्या का त्याग, गङ्गा के घाट से गुह द्वारा भक्तिपूर्वक गङ्गा पार

करवाना, वन में पहुंचना, भरत को पादुका एवं राज्य प्रदान करना वर्णित है। कथा अद्भुत तीव्रता से आगे बढ़ती है। राम द्वारा विराध का संहार, उदार तमिल महामुनि अगस्त्य द्वारा राम को धनुष दिया जाना, शूर्पणखा को दण्डित करना, खर और दूषण का वध करना इत्यादि घटनाओं का वर्णन है। मारीच का अन्त करने वाले श्रीराम की वन्दना कवि इन शब्दों में करता है—"तिल्लैनगर श्री चित्रकूट के भीतर सिर नवा, हाथ जोड़ स्तुति करने में समर्थों के संचरण से तपोमयी है यह धरणी।"

तदनन्तर वैदेही-वियोग, राम का अवसाद, जटायु का वैकुण्ठ-गमन, कपिराज के प्रेम की प्राप्ति, बाली का वध और मारुति द्वारा लङ्का का दहन करके राक्षस-राज के अभिमान का खण्डन वर्णन का विषय बना है। कथा की क्षिप्रगति का अनुमान अगले पद में होने वाली घटनाओं के विस्तार से लगाया जा सकता है। उद्वेलित समुद्र पर सेतुबन्ध बांध दूसरे तट पर पहुंच कर 'ज्वलन्त दीर्घ बर्छे वाले' राक्षसों के साथ लंकाधिप के प्रिय प्राण हर, उसके अनुज को राजत्व भी प्रदान कर, श्री लक्ष्मी के साथ सप्रीति विराजमान' वैभव वाले राम की यह कथा विकास प्राप्त करती हुई वापस सुन्दर सुनहले उन्नत मणिमय प्रासाद-युक्त अयोध्या पहुंच जाती है। वाल्मीकि-रामायण में वर्णित कथा के समान यहां भी राम द्वारा अपने बच्चों के मुख से स्वचरित-श्रवण करने का उल्लेख है। इससे सीता-वनवास, लवकुश-जन्म, राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान और उस प्रसंग में लव और कुश के द्वारा स्वकथा का परिचय प्राप्त करने का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कुलशेखर ने मात्र इतना कहा है—लोकोद्धार के लिए मिथिला की लक्ष्मी ने जिन्हें जन्म दिया, उन बालकों के अरुण प्रवाल-समूह तुल्य मुख से अपना चरित्र श्रवण करने वाले···प्रभु के चरित्र का हम आंख और कान से पान करेंगे। इसके अतिरिक्त शम्बूक-वध, ब्राह्मण के पुत्र के प्राणों को लौटा लाना, अगस्त्य मुनि द्वारा दिए हुए उत्तम मणिहार को ग्रहण करना इत्यादि विभिन्न अन्तर्कथाओं का कवि ने संकेत किया है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख करना उपयुक्त रहेगा कि रामकथा के दशरथ पुत्र ही गरुड़ पर आरूढ़ होने वाले और दीर्घ चार भुजाओं से युक्त विष्णु हैं जो तिल्लैनगर, श्री चित्रकूट (आज चिदम्बरम् के नाम से प्रसिद्ध) में विद्यमान हैं।

विष्णु, रंगनाथ, शेषशायी आदि

कुलशेखर आळ्वार ने विष्णु का रंगनाथ, राम एवं कृष्ण आदि रूपों में गुणगान किया है। 'श्रीरंग महानगर में शयन करने वाले नीलमणि', अथवा 'श्रीरंग में नागपर्यंक पर शयित मायी' ही राम हैं और वही कृष्ण हैं।

कवि के हृदय में श्रीरंगनाथ प्रभु के आंगन में आनन्दयुक्त भक्तों को देखने की प्रबल आकांक्षा है। उसका विश्वास है कि इससे विशाल अमरलोक तथा पृथ्वी के मनुष्यों की सद्‌गति (निस्तार) तो होगी ही, दुःख प्रदान करने वाले पाप नष्ट होंगे, सुख की अभिवृद्धि होगी और भक्त जनों का हृदय उल्लसित होगा। अनेक प्रसंगों में नागपर्यंक पर शयन करने वाले, युद्धोन्मुख चक्र को धारण करने वाले, सागर वर्ण के कमलनयन और कान्तियुक्त श्रीरंग के दर्शनों की कामना है। पेरुमाळ् तिरुमोळि के प्रथम दस पदों में दास्य-भक्ति तथा सर्वस्व-त्याग कर पूर्ण क्षमता सहित प्रभु की शरण में जाने की कामना प्रमुख है। पेरुमाळ् ही नारायण हैं, पेरुमाळ् ही श्रीरंग हैं।

जिनका वक्ष श्री लक्ष्मी देवी का आवास है और जो अम्लान वनमाला से विभूषित हैं, उनकी चर्चा करते हुए कवि कहीं तो उनके गोपालक रूप का उल्लेख करता है और कहीं वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करने का। यही श्रीरंग राम होकर रावण का संहार करते हैं और वामन होकर भूमि का व्यापन करते हैं। दधि, मक्खन और दूध एक साथ खाने वाले और ग्वालिन यशोदा द्वारा शृंखलाबद्ध किये जाने वाले, वृषभ के ककुत् को तोड़ने वाले, कालियनाग का मर्दन करने वाले प्रभु ही आदि, अन्त, अनन्त, अद्‌भुत् और स्वर्ग के देवों के स्वामी हैं—

आदि अन्तम् अनन्तम् अरपुदम्
आन वानवर् पिरान्
पाद मा मलर् शूडुम् पत्ति इलाद
पाविहळ् उयदिन्ड.........

विष्णु के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि अघाता नहीं है। सुगन्धित तुलसी-माला से विभूषित उन्नत गिरि तुल्य वक्ष है जिनका; जो पंकज लोचन हैं; उनसे प्रेम कर, उत्थित हो, नृत्य कर, गान कर, भ्रमण कर, उन रंगनाथ के प्रति जो विह्वल हो जाए, कुलशेखर तो उसके लिए भी अपने हृदय को बावला बना बैठे हैं। कवि

का मन ऐसे पारमार्थिक दासों के लिए पूर्णतया अनुरक्त है जो दलयुक्त उत्तम कमल पर आसीन देवी लक्ष्मी के साथ श्रीरंगनाथ के प्रति दास्यभाव से भक्ति करते हैं। एक पद में भक्त की मनोदशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—नेत्रों से प्रभु-भक्ति के कारण निरंतर अश्रु-प्रवाह, शरीर पुलकित, निरुत्साहित होकर उसी के प्रेम में पूर्णतया लिप्त; कभी स्तब्ध, कभी उत्साहित होकर, गीत गाकर प्रभु के प्रति प्रणाम करने वाले भक्त वास्तव में बावले नहीं हैं, शेष सब बावले हैं। यह प्रभु कहीं ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, तो कहीं प्रबल दानवी के स्तन को पीने वाले; कहीं ये अहीर हैं तो कहीं हार से विभूषित वक्ष वाले रंगनाथ, अनंत गुणवान् नारायण हैं।

मानलीला, उपालम्भ—एक विशिष्ट दृष्टि

इनके काव्य में गोपियों की मनःस्थिति का भावपूर्ण और सहज मनोवैज्ञानिक चित्रण उपलब्ध है। गोपियों के हृदय पर कृष्ण के बाह्य एवं आन्तरिक सौंदर्य के प्रभाव से उत्पन्न उज्ज्वल प्रेम तथा जीवन के स्वाभाविक आनन्द की अनुभूति को कवि ने अभिव्यक्ति दी है। पेरुमाळ् तिरुमोळि के एक पद में यमुना-तट पर दीर्घ समय तक प्रबल शीतल वायु के झोंकों—शीत ऋतु का समय, ओस मानो वर्षा की बूंदों के समान पड़ रही है—को सहन करके भी कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी गोपी जब उन्हें निकट पाती है तो उपालम्भ का आश्रय लेकर कहती है—अंधकार में बिजली के समान कटि वाली जिस ललना के साथ उल्लास के क्षण व्यतीत करके आये हो, वहीं जाओ! मैं तुम्हारी बात पर सहज विश्वास करके इस भयंकर शरीर भेदने वाली वायु को सहती सारी रात इस यमुना-तट पर तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही—पर तुम नहीं आये···जाओ अब वहीं जाओ।[1] इसी प्रकार एक अन्य पद में गोपी का कृष्ण के प्रति कथन है—तुमने मुझे कुंज में बुलाया था; जब मैं वहां पहुंची तो तुम किसी अन्य के आलिंगन में आबद्ध थे! मुझे देखा तो तुम कंपायमान हो उठे! मुझे पूर्ण विश्वास है कि हे पीताम्बरधारी, चाहे तुम किसी के भी साथ चले जाओ, कभी न कभी तो लौटोगे ही···मैं आक्रोश नहीं करूंगी, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।[2] मानलीला के ये प्रसंग 'एर् मलर्' अर्थात मनोहर पुष्प

---

१. पेरुमाळ् तिरुमोळि, ६. १-१०

२. वही

शीर्षक से वर्णित हैं। पंडित श्रीनिवास राघवन कृत 'दिव्य प्रबंध' में उपलब्ध अनुवाद का आश्रय लें तो बिम्ब सहज ही स्पष्ट हो जाएंगे—मुझसे 'आओ' कहकर गुच्छों में विकसित जूही के मंडप की छाया में डटी रहने वाली से संभोग का आरंभ कर, मुझे देख सकपका कर खिसक गये। कांचन-वर्ण दुकूल को हाथ में धर झूठ-मूठ ही भय दिखा यद्यपि तुम निकल गये, फिर मेरे पास इधर एक दिन आओगे तो अपना कोप उतारूंगी मैं! रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी वैदिक वैष्णव तथा 'तमिल साहित्य, विशेष रूप से आळ्वारों के वैष्णव साहित्य के अधिकारी विद्वान्' पंडित श्रीनिवास राघवन कोप उतारने का अर्थ करते हुए कहते हैं—'उसके आने पर मुंह फेर लेना ही उसका दंड है, न कि मारना या पीटना।' एक अन्य पद में भामिनी गोपी का कथन है—'मल्लों से लड़ते भुजावाले वासुदेव! मुझ महा-पापिनी के सोते ही उस दिन रात्रि के मध्य याम में मधुर शय्या पर मुझे छोड़ अलग जा तुम उस रात को तथा दूसरे दिन भी कामिनियों को गले लगा आये। मेरे निकट तुम किसलिए आए? मेरे प्रभु! तुम चले जाने की कृपा करो!' मात्र यही नहीं कृष्ण की 'धूर्तता' के तो अनेकों आयाम हैं—माता के स्तनों में अमृतमय दुग्ध के रहते, दानवी स्तन पर अधर रखना उनमें से एक है! काले पुष्पों से सुसज्जित कुन्तल वाली एक को कनखी से देख, वहां एक के पास मन लगन से रख, अन्य एक से सम्भाषण कर, एक अन्य मुग्धा को असत्य संकेत-स्थल का निर्देश देकर, कुटिल कुन्तल वाली एक ललना के साथ संभोग करते हैं! गोपी के माध्यम से कुलशेखर कहते हैं—उसके भी तुम सच्चे नहीं! अर्जुन वृक्षों का भंजन करने वाले! ज्यों-ज्यों तुम विकास करते हो, तुम्हारी माया तुम्हारे साथ ही स्वतः विकसित होती है! यह दामोदर, वासुदेव, फन-युक्त सर्प-शय्या पर शयन करने वाले अत्यधिक प्रेम के साथ मेरे रहते, मेरी भेजी उपस्थित दूती के संग अधिक भोग से भली भांति तृप्त हो लेते हैं। मंगल उत्तम वनमाला छाती पर जिससे उद्भासित हो, मोर पंख का गुच्छ सिर पर पहन, बहुत ही महीन दुकूल कटि पर धारण कर, पुष्पों का गुच्छ कान पर लगा, सौरभ से सुगंधित केशवालियों से हिल-मिल मधुर बांसुरी बजाते आए।' उसी वंशी की मधुर तान, संगीत-लहरी की कामना हृदय में संजोये गोपी का उपालम्भ सार्थक है! 'तरुण आभीर कन्याओं' के हृदय का सम्राट् तो वह है, पर उसके रहस्य से वे अपरिचित नहीं! 'हम पहले जैसी नहीं! हे अंजन, जिनसे तुम प्रेम करते हो, नेत्रों के रक्ताभ डोरों से उद्-भासित नेत्र वाली भी हम नहीं! विलम्ब कर हम अहीरों की बस्ती में आना बन्द

कर दो ! रक्तिम दुकूल; श्रीमुख, अरुण (विम्ब) फल अधर, चिकुर देख तुम्हारे झूठ के एक दिन का अनुभव ही पर्याप्त है। हे पूर्ण ! असत्य बोले बिना चले जाओ !'

देवकी की करुण स्थिति—सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण

कृष्ण के संदर्भ में नंद और यशोदा की मनोदशाओं का चित्रण प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में हुआ है और हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी कृष्णभक्त कवियों ने इसे काव्य का विषय बनाया है। परन्तु एक और भी 'मां' थी जो कवियों की दृष्टि से प्रायः ओझल रही, जिसके अपूर्व त्याग, अद्भुत धैर्य के फलस्वरूप ही कृष्ण यशोदा के 'कन्हैया' बने थे ! देवकी के मातृ-हृदय की मार्मिक व्यथा और वसुदेव के मन के 'उद्वेग' को समझा कुलशेखर आळ्वार ने। उन्होंने वसुदेव और देवकी के 'हृदय' को अभिव्यक्ति दी। अपनी ही कोख से उत्पन्न पुत्र के विभिन्न उत्सवों पर बधाई से वंचित, मातृत्व के उल्लासमय अधिकार और तृप्ति की भावना से वंचित देवकी की मनोव्यथा का अद्भुत चित्रण कुलशेखर आळ्वार की कृति 'पेरुमाळ् तिरुमोळि' के अंतर्गत हुआ है—

एळ्वार् कुवलेण् महण् तालो
एण्रेण्र् उण्णै एन् वायिडै निरैय
तालो लित्तिडुम् तिरुविणैयिल्लात्
ताय—रिल्कडै यायिण तायै ।[1]

बड़ी अभागिन हूं मैं ! अपने पुत्र को झूलने में डालकर अपनी स्वानुभूत लोरियां गाकर सुलाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ ! इसी प्रकार अनेक अन्य पदों में हृदय की यह अमिट प्यास शब्दों का आश्रय लेती है—उस सुन्दर बालक को अपने वक्षस्थल के साथ लगाकर तृप्त होने का भाग्य मुझे नहीं मिला। यशोदा जब कृष्ण से पूछती है—'तुम्हारे बाबा कहां हैं' तो मेरा पुत्र अपनी नन्ही कोमल उंगलियों से नंद की ओर इशारा करता है—वह आनंद जो नंद को मिलता है, मेरे पति तो उससे वंचित ही रहे ! कृष्ण की तोतली बोली सुनकर उल्लसित होकर उसके मुख पर चुम्बन करने का अधिकार तो यशोदा को ही प्राप्त है।...तुम्हारे सौंदर्य, तुम्हारे क्रिया-कलाप आदि को अनुभूत कर पुलकित होने का सौभाग्य मुझे नहीं

---

१. पद, ७.१

मिला। बड़ी अभागिन हूं मैं !...

'मार् विल् मन्निडपेट्रिलेन्'—मुझे अपने वक्ष पर तुम्हारे धूलि-धूसरित नन्हे हाथों के अंकित होने का सौभाग्य नहीं मिला। कमल के सदृश नेत्र वाले कृष्ण जब घुटनों के बल चलते हैं...

तण्णन् तामरैक् कण्णने ! कण् णा !
तवळ्न्देळुन्दु तलरन्तोर नडैयाल्,
मण्णिल् सेम्पोडि याडिवन् तेन्ट्रन्
मार् विल् मन्निडप् पेट्रिले नन्दो ![1]

इस पद में भावातिरेक की स्वाभाविक अभिव्यक्ति; मां देवकी के हृदय की पीड़ा का तथा उसके हृदय में हिलोरें लेता हुआ कृष्ण के प्रति अथाह प्रेम का सहज ही अनुमान हो जाता है। बच्चे के द्वारा खाये हुए भोजन के उपरान्त शेष को मां अमृत तुल्य मानकर खा लेती है ! मगर मुझे तो वह अनुभव भी नहीं हुआ ! तिरुवल्लुवर ने कहा था कि अपनी संतान के नन्हे-नन्हे हाथों द्वारा साधारण भोज्य पदार्थ अमृत से भी भी अधिक मधुर होता है।[2] इसी कामना को हृदय में संजोये देवकी की स्वाभाविक इच्छा है कि धूलि-धूसरित पुत्र आकर मैया को आलिंगित करे। यशोदा के भाग्य में कृष्ण की बाल-सुलभ विविध चेष्टाएं अनुभव करना लिखा था अतः 'कण्णा' उसके आंगन में खेलते हैं। मां देवकी के हृदय का आलोड़न, उसकी अतृप्त आकांक्षा कुलशेखर आळ्वार द्वारा अभिव्यक्त होती है। जेसुदासन दम्पति अपने 'A History of Tamil Literature' में लिखते हैं—But, everywhere an intensely intimate note is heard. One of his poems addressing Krishna is through the lips of Devaki, Krishna's mother, from whom her son was taken away. All the passionate longing of the childless mother is perceived here. The great experiences of motherhood which she has missed, and the joys of Krishna's foster mother Yasodai, form the theme of this tense moving poem, handled by a master-artist.

---

१. पेरुमाळ् तिरुमोळि, ७.६

२. कुरल, ६४

भक्त की अपूर्व निष्ठा

पेरुमाळ् तिरुमोळि के अंतर्गत कुलशेखर प्रभु को एकमात्र आश्रय मानकर उनकी शरण की कामना करते हैं—हे भगवन्, जब हम निराश होते हैं तो आप ही संरक्षक हो ! यदि विपत्ति में भी आप सहायता न करो तो भी मुझे आपकी ही शरण आना है। विट्रुवक्कोट्ट के प्रभु ! यदि मां आक्रोश में आकर बच्चे को दूर भी हटा दे तो भी बच्चा मां के पास ही आता है:—

> तरु तुयरम् तडायेलुन् शरण अल्लाल् शरण इल्लै······
> अरि सिनत्ताल् ईनरताय् अहट्रिडिनुम् मट्रवल्तन्
> अरुल्निनैन्दे यळुम् कुलवि अदुवे पोन्रिरुन्देने !

भक्ति रस में आप्लावित कुलशेखर तो एकछत्र देवलोक का शासन, उर्वशी के मनोहारी, स्वर्णमयी मेखला आभूषित सौंदर्य अथवा विद्युत् सम सूक्ष्म कटिवाली मेनका अथवा उसके सदृश अन्य के सौंदर्य गान तथा नृत्य का भी त्याग कर मात्र वेंकटगिरि से अपना किसी भी रूप में सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं। वे तो श्रीमन्नारायण से प्रार्थना करते हैं कि वेंकट स्वामी के मंदिर के द्वार पर एक सीढ़ी के रूप से उनका अस्तित्व हो; और आज भी दक्षिण भारत के विष्णु मंदिरों में गर्भ-गृह के समक्ष सोपान को 'कुलशेखरन्-पीड़' अर्थात् कुलशेखर-सोपान कहा जाता है और भक्तजन उस पर चरण रखे बिना आदर भाव से उसे लांघ कर भीतर प्रवेश करते हैं। प्रभु के अरुण चरणों के दर्शन की अदम्य आकांक्षा के परिणामस्वरूप कवि कथन है—भासमान प्रवाल से युक्त तरंगों से संचरित शीत क्षीर सागर पर शयित मायावी के चरण युगल को देखने के लिये, गीति गूंजने वाले भ्रमरों के गीतिगान से युक्त, वेंकटगिरि का चंपक वृक्ष बनकर खड़े रहने का मुझे सौभाग्य मिले।

सर्वात्मभाव में भगवत्-दर्शन

एक पद में प्रभु के चरणों की सेवा की लालसा हमें सहज ही 'शिक्षाष्टक' में वर्णित भक्त की स्थिति का आभास देती है—'हे प्रभु ! कब हमारी ऐसी प्रेम-विभोर अवस्था होगी कि आपका नामोच्चारण करते हुए नेत्रों से अश्रुधारा चलेगी, गद्गद कंठ होने से वाणी अवरुद्ध हो जाएगी और सम्पूर्ण शरीर रोमांचपूर्ण हो

उठेगा।"[1] कुलशेखर का कथन है—किस दिन मुझे यह परम भाग्य प्राप्त होगा—"किस दिन मैं सदैव भगवान् के प्रति अनुराग भरे भक्तों की मण्डली में संयुक्त हो जाऊंगा और उनके साथ विभिन्न स्तुतिगीत गाते हुए, वर्षा के समान नयन-नीर बहाते हुए भगवान् का बारम्बार स्मरण करूंगा, द्रवीभूत होकर वंदना करूंगा। जिस श्रीरंगपुरी में डमरुओं का निनाद समुद्रनाद का स्मरण दिलाता है, उस पुरी की आदिशेष रूपी शय्या पर शयन कर रहे चक्रधर प्रभु के दर्शन के उन्माद से उछल-उछल कर धरती पर मैं किस दिन लोटूंगा।" डॉ० एन० चन्द्रकान्त के अनुसार इनके पदों का भाव इनके चिंतन की अनन्यता और भक्ति की तीव्रता का तो परिचय देता ही है, सर्वात्मभाव में उन्हें सर्वत्र भगवद्दर्शन ही होते हैं—"मुझे न धन चाहिए, न शारीरिक सुख, न मुझे राज्य की कामना है, न मैं इन्द्र पद ही चाहता हूं; और न मुझे सार्वभौम सत्ता ही चाहिए। मेरी तो केवल यही कामना है कि मैं तुम्हारे मंदिर की एक सीढ़ी बनकर रहूं, जिससे भक्तों के चरण बार-बार मेरे मस्तक पर पड़ें। प्रभो ! जिस मार्ग से भक्त लोग तुम्हारी श्रीमूर्ति के दर्शन करने के लिए प्रतिदिन जाया करते हैं, उस मार्ग का मुझे एक छोटा रजकण ही बना दो। अथवा जिस नली से तुम्हारे बगीचे के वृक्ष की सिंचाई होती है, उस नली का एक जलकण ही दना दो। अथवा अपनी वाटिका का एक चम्पा का पेड़ ही बना दो जिससे मैं अपने सुमनों द्वारा तुम्हारी नित्य पूजा कर सकूं; अन्यथा मुझे अपने यहां के सरोवर का एक छोटा सा जलजन्तु ही बना दो।" यह पद हमें मुकुन्दमाला के 'नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे···' (न मेरी आस्था धर्म में है, न धन संचय में और न ही काम के उपभोग में···') श्लोक का सहज ही स्मरण दिला देता है। गीता के अर्जुन ने भी तो यही कहा था—'हे कृष्ण ! मैं न तो विजय चाहता हूं और न राज्य तथा सुखों को ही।'[2] और बाद में रसखान की वाणी से निःसृत 'पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारण' में भी तो यही कामना अभिव्यक्त हुई है।

---

१. नयनं गलदश्रुधारया वचनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥
नारदभक्ति दर्शन, पृ० ७६ से उद्धृत

२. न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।' श्रीमद्भगवद्गीता, १।३२

प्रपत्ति मार्ग

भगवद्गीता का कथन है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

संपूर्ण भूत प्राणियों के लिये जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में (भगवत् को प्राप्त हुआ) योगी पुरुष जागता है (और) जिस नाशवान् क्षणभंगुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते हैं तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि है। सांसारिक आकर्षणों के मिथ्यात्व एवं इन्द्रिय-भोगों की निःसारता से पूर्णतया परिचित कुलशेखर आळ्वार 'भक्ति' मार्ग के सच्चे पथिक हैं। इस विश्व की उद्विग्नता, इसमें व्याप्त द्वेष का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं—मैं मानव-जीवन की उन पीड़ाजनक कामनाओं को त्यागकर अतृप्त पर संतुष्ट हृदय से सत्य के राजमार्ग पर अग्रसर हूं, जो स्वर्ण के प्रकाश से सदैव प्रकाशित है। इस जगत् के प्रेमी मुझे पागल कहते हैं। मेरे विचार में सांसारिक क्षणिक सुखों के भ्रम में पड़े वे लोग ही पागल हैं। हां ! मुझमें एक अद्भुत तीव्र उन्माद है, वह है भगवत् प्रेम रूपी मधु का पान करने से उन्मत्त जीवन का नशा।

इनकी विवेच्यकृति में 'आनुकूल्यस्य संकल्पः', 'प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्', 'रक्षिष्य-तीति विश्वासो', 'गोप्तृत्वे वरण', 'आत्मनिक्षेप तथा 'कार्पण्य', छः प्रकार की शरणा-गति की कसौटी पूर्ण रूपेणसिद्ध होती है। कार्पण्य अथवा पूर्ण अकिंचनता का भाव उन्हें भगवद्भक्तों की शरण में ले जाता है, उनके चरण-रज को ग्रहण करने की आकांक्षा, उनका सत्संग, 'पवित्रता की गंगा में स्नान' और फिर अंतःसाक्षात्कार की प्रक्रिया द्वारा सीमित 'मन' को उस 'असीम' के सौंदर्य से संपृक्त करने का प्रयास, उसकी असीम कृपा को ग्रहण करने के लिए सक्षम बनाने का उपक्रम आरम्भ होता है। यह प्रक्रिया निरंतर चलने वाली है। इसी प्रक्रिया में प्रभु पर अनन्य आसक्ति की स्थिति आती है जिसमें वह उसी को देखता है, उसी को सुनता है, उसी को बोलता है और उसी का चिन्तन करता है—'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति'। भक्त की प्रभु पर निर्भरता के लिए लोकजीवन के कुछ उदाहरणों से कुलशेखर आळ्वार अपने कथन को प्रमाणित करते हैं, जिनमें से कतिपय इस प्रकार हैं—

१. भगवद्गीता, १२।६६

(क) 'अत्यधिक क्रोध से युक्त होकर, जन्मदात्री माता द्वारा त्यागे जाने पर भी माता का ही स्मरण करके रोने वाले बच्चे के समान'

(ख) 'पति के द्वारा सताए जाने पर उसका त्याग न कर उसकी सेवा में संलग्न उच्चकुल की पतिव्रता स्त्री के समान'

(ग) 'नृपति द्वारा किए गए अत्याचार और अन्याय के कष्टों को सहने पर भी उस पर आश्रित प्रजा के समान'

(घ) 'सब ओर उछलता सागर देखकर, किनारा देख पाने में असमर्थ, निराश होकर पुनः चलती नाव के स्तम्भ पर लौट आने वाले बड़े पक्षी के समान'

(ङ) 'प्रबल प्रकाश और तीव्र उष्णता के रहने पर भी केवल सूर्य की किरणों द्वारा ही खिलने वाले सरसिज के समान'

(च) 'छुरी से काटकर दाहन करने पर भी चिकित्सक के प्रति अटल प्रीति करने वाले रोगी की भांति'

कुलशेखर के काव्य में शरणागति अपनी पूर्णता सहित विद्यमान है। सर्वभूतों, सर्वात्माओं तथा सर्वव्यापक प्रभु को सर्वत्र जानकर समस्त प्राणियों के अनुकूल होना (आनुकूल्यस्य संकल्पः); भगवद् इच्छा के विपरीत शारीरिक अथवा मानसिक कर्मों का परित्याग (प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्), प्रभु को अपना संरक्षक मानकर उन पर पूर्ण विश्वास (रक्षिष्यतीति विश्वासः) उनकी शरणागत वत्सलता तथा रक्षक स्वरूप को जानकर उनके द्वारा स्वीकार किए जाने की भावना से प्रार्थना (गोप्तृत्ववरणं); तन, मन, धन तथा आत्मा सहित सर्वस्व भगवान् को समर्पित करना (आत्मनिक्षेप) और अहंकार का पूर्ण त्याग कर दैन्य भाव से, अन्य सभी साधन व्यर्थ जानकर भगवद्कृपा पर निर्भर करना (कार्पण्य) है। कुलशेखर आळ्वार के काव्य में इस शरणागति के संकेत विभिन्न स्थलों पर स्पष्ट किए जा चुके हैं। प्रेम तथा अनन्य आस्था के द्वारा प्रभु के साथ एकलय, एकतान हो जाने की उत्कट पिपासा से युक्त इस कवि के काव्य का विश्लेषण हमें उनकी अंतश्चेतना का परिचय तो देता ही है, तद्युगीन समाज में व्याप्त 'भक्ति' का भी एक आभास हमें उपलब्ध होता है। पिता-पुत्र, प्रिय-प्रिया, माता-पुत्र, स्वामी-दास, इत्यादि सभी सम्बन्ध चिन्तन की प्रबल एकनिष्ठता; ईश्वर पर पूर्ण निष्ठा एवं विश्वास की ओर ही उन्मुख करते हैं। उसके साथ एकीकृत होने का 'अनुभव' और आत्मानुभूति का यह मार्ग निश्चय ही भक्ति की विशाल गंगा-धारा का एक ठोस 'तट' है जहां से गंगा-अवगाहन स्वतः ही सहज हो जाता है।

□□

मुकुन्दमाला

मूल एवं हिन्दी अनुवाद

करचरणसरोजे कान्तिमन्नेत्रमीने
श्रममुषि भुजवीचिव्याकुलेऽगाधमार्गे ।
हरिसरसि विगाह्यापीय तेजोजलौघं
भवमरुपरिखिन्नः क्लेशमद्य त्यजामि ॥

हस्त और चरण रूपी सरोजयुक्त, देदीप्यमान नेत्र रूपी मीन युक्त, भुजारूपी लहरों से व्याप्त, श्रम को दूर करने वाले अगाधमार्ग उस हरि रूपी सरोवर में अवगाहन करके और तेजरूपी जलराशि का पान करके भवरूपी मरुस्थल से परिक्लांत मैं आज क्लेश का परित्याग करता हूँ ।

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ।।१।।

कमलदल के समान विशाल नेत्र वाले; कुन्दपुष्प, चन्द्र एवं शंख के समान (धवल) दन्तवाले; बालगोप का वेष धारण करने वाले; इन्द्र आदि देवतासमूह द्वारा वन्दित चरण-पीठ वाले; वृन्दावनवासी वसुदेव के पुत्र 'मुकुन्द' की मैं वन्दना करता हूँ ।

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ।।२।।

हे मुकुन्द ! 'तुम श्रीवल्लभ हो, वरदाता हो, दयाशील हो' भक्तप्रिय हो, संसार का विनाश करने में प्रवीण हो, नाथ हो, शेषनाग पर शयन करने वाले हो, जगन्निवास हो'—मुझे प्रतिदिन इस प्रकार का आलाप करने वाला बनाओ ।

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥

इन देवकीनन्दन देव की जय हो, वृष्णिवंश के प्रदीप कृष्ण की जय हो; मेघ के समान श्याम, कोमल अंग वाले, पृथ्वी का भार नष्ट करने वाले मुकुन्द की जय हो, जय हो।

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥४॥

हे मुकुन्द ! मैं शीश झुकाकर आपसे केवल इतनी याचना करता हूँ कि आपकी कृपा से प्रत्येक जन्म में आपके चरण कमलों में मेरी निरन्तर स्मृति बनी रहे।

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम् ।
रम्या रामा मृदुतनुलता नन्दने नाभिरन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ।।५।।

हे हरि ! द्वन्द्वमुक्ति के हेतु मैं आपके चरणद्वन्द्व की वन्दना नहीं करता, न ही भारी कुम्भीपाक नरक से बचने के लिए और न ही नन्दन वन में नारी की रमणीय कोमल तनुलता में रमण करने के हेतु मैं आपकी वन्दना करता हूँ। मैं तो आपको प्रत्येक भाव में अपने हृदयभवन में भावित करता हूँ ।

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ।।६।।

न तो मेरी आस्था धर्म में है, न धनसंचय में और न ही कामनाओं के उपभोग में । पूर्व जन्म के कर्मों के अनुरूप हे भगवन् ! जो होना है वह हो । मेरा अभीष्ट तो यह प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके चरण कमल युगल में मेरी निश्चल भक्ति हो ।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ।।७।।

हे नरकासुर का अन्त करने वाले ! मेरा निवास चाहे स्वर्ग में हो, चाहे पृथ्वी पर हो अथवा नरक में हो—शारदा एवं कमल को भी तिरस्कृत करने वाले आपके चरणों का मैं मृत्युकाल में भी चिन्तन करूँ।

चिन्तयामि हरिमेव सन्ततं
मन्दहासमुदिताननाम्बुजम्।
नन्दगोपतनयं परात्परं
नारदादिमुनिवृन्दवन्दितम् ।।८।।

मन्द मुस्कान से उल्लसित मुखकमल वाले, नन्दगोप के पुत्र, परमतत्त्व से भी पर, नारद आदि मुनिगण द्वारा वन्दित हरि का ही मैं निरन्तर चिन्तन करता हूँ।

करचरणसरोजे कान्तिमन्नेत्रमीने
श्रममुषि भुजवीचिव्याकुलेऽगाधमार्गे।
हरिसरसि विगाह्यापीय तेजोजलौघं
भवमरुपरिखिन्नः क्लेशमद्य त्यजामि ॥९॥

हस्त और चरणरूपी सरोजयुक्त, देदीप्यमान नेत्र रूपी मीनयुक्त, भुजारूपी लहरों से व्याप्त, श्रम को दूर करने वाले अगाध मार्ग उस हरि रूपी सरोवर में अवगाहन करके और तेज रूपी जलराशि का पान करके भवरूपी मरुस्थल से परिक्लान्त मैं आज क्लेश का परित्याग करता हूँ।

सरसिजनयने सशङ्खचक्रे
मुरभिदि मा विरमस्व चित्त रन्तुम्।
सुखतरमपरं न जातु जाने
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥१०॥

कमल के समान नेत्रों वाले, शंख और चक्र धारण करने वाले, मुर (राक्षस) के विनाश करने वाले, हरि में रमण करने से हे चित्त ! विरत मत हो। हरि के चरणों के स्मरणरूपी अमृत के समान किसी अन्य सुख को मैं नहीं जानता।

माभीर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना
नामी नः प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥११॥

हे मन्दमति मन ! यम द्वारा प्रदत्त विविध यातनाओं के विषय में विचार करके भयभीत मत हो। जब श्रीधर हमारे स्वामी हैं तो यह पापरूपी शत्रु हमें वशीभूत नहीं कर सकते। आलस्य को त्याग कर, भक्ति के द्वारा सुलभ नारायण का ध्यान करो। संसार के कष्टों को दूर करने में सक्षम वे क्या अपने दास के कष्टों का हरण नहीं करेंगे ?

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥१२॥

भवसागर में पड़े हुए; द्वन्द्वरूपी आँधी से आहत; पुत्र, पुत्री और पत्नी की रक्षा के भार से पीड़ित; विषयरूपी विषम जल में निमग्न डूबते हुए मनुष्यों के लिए केवल विष्णुरूपी जहाज ही एकमात्र आश्रय हो।

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम् ।
सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥१३॥

संसाररूपी इस अगाध और दुस्तर भवसागर को मैं कैसे पार करूँगा ?' — इस प्रकार सोचकर हे चित्त ! व्याकुल मत हो। कमल के समान नेत्र धारण करने वाले, नरकासुर का संहार करने वाले देव में तुम्हारी एकनिष्ठ भक्ति अवश्य ही तुम्हारा उद्धार करेगी।

तृष्णातोये मदनपवनोद्धुतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च ।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधाम-
न्पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावं प्रयच्छ ॥१४॥

तृष्णारूपी जल आपूरित, कामरूपी पवन से उद्वेलित, मोहरूपी ऊर्मियों की माला से व्याप्त, स्त्रीरूपी भंवर से युक्त, पुत्ररूपी ग्राह-समूह से संकुलित संसार नाम के इस महासागर में डूबते हुए हमारे लिए हे वरदाता त्रैलोकपति ! अपने चरणकमल की भक्तिरूपी नाव प्रदान करो।

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुस्फुलिङ्गो लघु-
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः।
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा
दृष्टा यत्र स तावको विजयते भूमावधूतावधिः ॥१५॥

जहाँ पृथ्वी सूक्ष्म रेणु सी, जल छोटी कणिकाओं जैसा, तेज तुच्छ लघु स्फुलिंग की भाँति, वायु अल्प सा निश्वास और आकाश सुसूक्ष्म रन्ध्र सा प्रतीत हो एवं समस्त देवता रुद्र पितामह आदि क्षुद्र कीटवत् दृष्टिगोचर हों वह आपकी भूमा को भी तिरस्कृत करने वाली कालावधि विजित होती है।

हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमं
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥१६॥

हे मनुष्यो ! सुनो। याज्ञवल्क्य आदि योग का ज्ञान रखने वाले मुनि जिसे जन्म-मरण रूपी रोग (व्याधि) का निदान कहते हैं उस अन्तर्ज्योति रूपी अपरिमेय केवल कृष्ण-नामक अमृत का पान करो। पान की गई यह परम औषधि आत्यन्तिक निर्वाण प्रदान करती है।

हे मर्त्याः परमं हितं शृणुत वो वक्ष्यामि संक्षेपतः
संसारार्णवमापदूर्मिबहुलं सम्यक्प्रविश्य स्थिताः।
नानाज्ञानमपास्य चेतसि नमो नारायणायेत्यमुं
मन्त्रं सप्रणवं प्रणामसहितं प्रावर्तयध्वं मुहुः॥१७॥

हे मनुष्यो ! आप अपने परम हित की बात सुनिए। मैं संक्षेप से बतलाता हूँ। आपत्तिरूपी ऊर्मिबहुल इस संसार सागर में भली भाँति प्रविष्ट होकर स्थित हुए तुम बहुविधि ज्ञान को त्याग करके, चित्त ही चित्त में ओंकार सहित 'नमो नारायणाय,'—मन्त्र की प्रणत होकर बार-बार आवृत्ति करो।

नाथे नः पुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति।
यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम॥१८॥

तीनों लोकों के एकाधिपति, मन द्वारा वन्दनीय, अपने पद को प्रदान करने वाले हमारे नाथ पुरुषोत्तम परनारायण के विद्यमान रहते हम जो किसी पुरुषाधम कुछ ग्रामों के स्वामी और स्वल्प अर्थ प्रदान करने में समर्थ नर को सेवार्थ ढूँढ़ते हैं। अहो ! हम विचारे कितने मूर्ख हैं।

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगदगदेन नयनेनोद्गीर्णबाष्पाम्बुना।
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-
मस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं संपद्यतां जीवितम् ॥१९॥

हे कमलनयन! अंजलि बाँधकर, नत-मस्तक होकर, रोमांचित अंगों से, गदगद् स्वर वाले कण्ठ से, वाष्पजल विसर्जित करने वाले नेत्रों से, नित्यरूप से आपके चरणकमल युगल के ध्यानरूपी अमृत का आस्वाद करने वाले हम सबका जीवन सदा सम्पन्न हो।

यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वर्ष्म तद्वै शिर-
स्ते नेत्रे तमसाज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवध्यायिनी
सा जिह्वामृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति नारायणम् ॥२०॥

शीश वही है जिसका मस्तक कृष्ण के समक्ष प्रणिपात करने के कारण धूल से धूसरित हो, अन्धकाररहित सुरुचिर नेत्र वही हैं जिनसे हरि का दर्शन किया जाता हो, निर्मल चन्द्र और शंख के समान धवल बुद्धि वही है जो माधव का ध्यान करने वाली है और अमृत बरसाने वाली जिह्वा वही है जो प्रतिपल नारायण की ही स्तुति करती है।

जिह्वे कीर्तय केशं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युतकथाः श्रोत्रद्वय त्वं श्रणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम् ।।२१।।

हे जिह्वे ! केशव का नाम कीर्तन करो। हे चित्त ! मुरासुर के शत्रु का भजन करो। हे करद्वय ! श्रीधर की अर्चना करो। हे कर्णद्वय ! अच्युत की कथा का श्रवण करो। हे नेत्रयुगल ! कृष्ण का ही दर्शन करो। हे पादयुग्म ! हरि के निवास स्थान को जाओ। हे नासिके ! मुकुन्दचरणरूपी तुलसी को सूंघो। हे मस्तक ! (अधोक्षज) कृष्ण को प्रणाम करो।

आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
मेदच्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः ।।२२।।

जिनके चरणकमलयुगल के स्मरण के बिना वेदों का अभ्यास अरण्यरुदन के समान हुआ; कठोर व्रत जिनका फल चर्बी को घटाना मात्र है और वापी, कूपतडाग मन्दिर, अन्नप्रदान, बाग लगवाना (पूर्त विधियाँ) आदि धार्मिक कृत्य सब भस्मसात् हो गये; तीर्थों में स्नान करना हस्तिस्नान की भाँति निष्फल हुआ;—उन देव नारायण की विजय हो।

मदन परिहर स्थितिं मदीये मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि ।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ।।२३।।

हे मदन ! मुकुन्द के चरणारविन्द के धाम मेरे मन से तुम दूर हट जाओ । तुम शिव के नेत्र की अग्नि से दग्ध हो । फिर भी मुरारि के चक्र के पराक्रम को स्मरण नहीं करते ?

नाथे धातरि भोगिभोगशयने नारायणे माधवे
देवे देवकिनन्दने सुरवरे चक्रायुधे शार्ङ्गिणि
लीलाशेषजगत्प्रपञ्चजठरे विश्वेश्वरे श्रीधरे
गोविन्दे कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं वर्तनैः ।।२४।।

नाथ, विधाता, नाग के फण पर शयन करने वाले, नारायण, माधव, देव, देवकीनन्दन, देवताओं में श्रेष्ठ, सुदर्शनचक्र धारण करने वाले, शार्ङ्गपाणि, अपनी लीला के द्वारा सम्पूर्ण जगत्प्रपंच को उदरस्थ करने वाले, विश्वेश्वर, श्रीधर गोविन्द में अपनी अचल चित्तवृत्ति लगाओ । अन्य क्रियाकलापों से क्या प्रयोजन ?

माद्राक्षं क्षीणपुण्यान्क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान्पदाब्जे
माश्रौषं श्राव्यबद्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम् ।
मास्मार्षं माधव त्वामपि भुवनपते चेतसापह्नुवःना-
न्माभूवं त्वत्सपर्यापरिकररहितो जन्मजन्मान्तरेऽपि ।।२५।।

आपके चरणकमलों की भक्ति से रहित क्षीणपुण्य व्यक्तियों को मैं क्षण भर के लिए भी न देखूं। आपके चरित्र के अतिरिक्त काव्यबद्ध अन्य किसी आख्यान को मैं न सुनूं। हे भुवनपति! हे माधव! आपको चित्त से विस्मृत (अपह्नव) करने वालों का मैं स्मरण न करूँ और जन्म, जन्मान्तर में भी मैं आपके पूजाविधान से रहित न होऊँ।

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव ।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ।।२६।।

हे मधु और कैटभ के शत्रु। मेरे जन्म का यही साफल्य है, मेरा यही प्रार्थ्य है, मुझ पर यही अनुग्रह है कि हे लोकनाथ! आप मुझे अपने दासानुदास के परिचारक के दास के दासानुदास के भी दासरूप में स्मरण करें।

तत्त्वं ब्रुवाणानि परं परस्तान्मधु क्षरन्तीव मुदावहानि।
प्रावर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे नामानि नारायणगोचराणि ॥२७॥

हे जिह्वे ! पर से भी परम तत्त्व का वर्णन करने वाले, मधु की वर्षा करते हुए से आनन्द प्रदान करने वाले नारायणगोचर नामों की आवृत्ति करो। मैं अंजलि बाँधे हुए हुं।

नमामि नारायणपादपङ्कजं करोमि नारायणपूजनं सदा।
वदामि नारायणनाम निर्मलं स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम् ॥२८॥

मैं नारायण के चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ। सदैव नारायण का पूजन करता हूँ। नारायण के निर्मल नाम का कीर्त्तन करता हूँ और अविनाशी नारायण तत्त्व को स्मरण करता हूँ।

श्रीनाथ नारायण वासुदेव गोविन्द दामोदर चक्रपाणे।
श्रीपद्मनाभाच्युत कैटभारे श्रीराम पद्माक्ष हरे मुरारे॥२६॥
अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण जनार्दनानन्द निरामयेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम् ॥३०॥

आपको श्रीनाथ, नारायण, वासुदेव, गोविन्द, दामोदर, चक्रपाणि, श्रीपद्मनाभ अच्युत, कैटभारि, श्रीराम, पद्माक्ष, हरि, मुरारि, अनन्त, वैकुण्ठ, मुकुन्द, कृष्ण, जनार्दन, आनन्द एवं निरामय कहने में समर्थ होने पर भी यदि कोई ऐसा नहीं कहता तो मनुष्यों की इस व्यसनपरायणता पर खेद है।

भक्तापायभुजङ्गगारुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।
यः कान्तामणिरुक्मिणीघनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः
श्रेयो देवशिखामणिर्दिशतु नो गोपाल चूडामणिः॥३१॥

जो भक्तों के कष्टरूपी सर्प के लिए गरुड़मणि है, तीनों लोकों के लिए रक्षा-मणि है, गोपियों के नेत्ररूपी चातक के लिए अम्बुदमणि है, सौन्दर्य की मुद्रामणि है, कान्तामणि है, रुक्मिणीं के विशाल कुचयुग्म के लिए आभूषणमणि और जो देवताओं की शिखामणि है वह गोपाल चूड़ामणि हमारा कल्याण करे।

शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसंपूज्यमन्त्रं
संसारोत्तारमन्त्रं समुपचिततमःसङ्घनिर्याणमन्त्रम् ।
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसंदष्टसंत्राणमन्त्रं
जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्यमन्त्रम् ।।३२।।

शत्रुओं का विनाश करने वाला एकमन्त्र, सभी उपनिषद् वाक्यों का संपूज्य मन्त्र, संसार से उद्धार करने वाला मन्त्र, घनीभूत निविड़ अंधकार को दूर करने का मन्त्र, सभी ऐश्वर्यों का एकमात्र मन्त्र, व्यसनरूपी भुजंग द्वारा दंशित व्यक्तियों के लिए त्राणमन्त्र एवं जन्म को सफल करने वाले इस श्रीकृष्णमन्त्र का हे जिह्वे ! निरन्तर जाप कर।

व्यामोहप्रशमौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्त्यौषधं
दैत्येन्द्रार्तिकरौषधं त्रिजगतां संजीवनैकौषधम् ।
भक्तात्यन्तहितौषधं भवभयप्रध्वंसनैकौषधं
श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पिब मनः श्रीकृष्णदिव्यौषधम् ।।३३।।

हे मन ! व्यामोह को शान्त करने की औषधि, मुनियों की मनोवृत्ति की प्रवृत्ति की औषधि, आसुरी प्रवृत्तियों को कष्ट प्रदान करने की औषधि, तीनों लोकों के लिए संजीवनी रूप एक औषधि, भक्तों का अत्यन्त हित करने वाली औषधि, संसाररूपी भय को ध्वंस करने की एकमात्र औषधि एवं श्रेय को प्राप्त कराने वाली श्रीकृष्णरूपी इस दिव्य औषधि का पान कर।

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्त
रद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ।।३४।।

हे कृष्ण ! मेरे मानस का राजहंस आज ही आपके चरण कमलरूपी पिंजरे में प्रविष्ट हो जाय। प्राणों के प्रयाण के समय तो कफ, वात और पित्त के कारण कण्ठ के अवरुद्ध हो जाने की दशा में आपका स्मरण कहाँ सम्भव है।

चेतश्चिन्तय कीर्तयस्व रसने नम्रीभव त्वं शिरो
हस्तावञ्जलिसंपुटं रचयतं वन्दस्व दीर्घं वपुः।
आत्मन् संश्रय पुण्डरीकनयनं नागाचलेन्द्रस्थितं
धन्यं पुण्यतमं तदेव परमं दैवं हि संसिद्धये ।।३५।।

संसिद्धि प्राप्त करने के हेतु हे चित्त ! तुम पुण्डरीकाक्ष, नागाचलेन्द्र पर स्थित पुण्यतम और धन्य उन्हीं परम दैव का चिन्तन करो। हे जिह्वे ! कीर्तन करो। हे मस्तक ! तुम प्रणत होओ। हे हस्तो ! अञ्जलि बाँधो। हे विशाल शरीर ! वन्दना करो। हे आत्मन् । उन्हीं का आश्रय लो।

शृण्वन् जनार्दनकथागुणकीर्तनानि
देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः ।
नोपद्यते नयनयोर्विमलाम्बुमाला
धिक्तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य ।।३६।।

जनार्दन की कथा, गुण और कीर्त्तन को सुनकर जिसकी देह रोमाञ्चित नहीं हो जाती, जिसके नेत्रों से निर्मल जल की धारा नहीं प्रवाहित होती उस अधम पुरुष के जीवन को धिक्कार है।

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चोरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ।।३७।।

हे प्रभो ! विवेक रूपी महाधन के अपहृत हो जाने के कारण अन्धे एवं इन्द्रिय नाम के प्रबल चोरों के द्वारा मोहरूपी अन्धकूप के गह्वर में गिराये गये मुझ कृपण को हे देवेश ! अपने हाथ का सहारा दो ।

इदं शरीरं श्लथसन्धिजर्जरं पतत्यवश्यं परिणामपेशलम्।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते निरामयं कृष्णरसायनं पिब ॥३८॥

परिणति में नश्वर यह शरीर सन्धि-जोड़ों के शिथिल हो जाने पर जर्जर होकर अवश्य ही नाश को प्राप्त होगा। हे मूढ़! दुर्मति! औषधियों से क्लेश प्राप्त क्यों करते हो? उस कृष्णरूपी निरामय रसायन का पान करो।

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके
सुधां परित्यज्य विषं पिबन्ति।
नामानि नारायणगोचराणि
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ॥३९॥

बड़े आश्चर्य की बात है कि इस मनुष्य लोक में लोग अमृत का परित्याग करके विष का पान करते हैं। नारायण के गोचर नामों का त्याग करके वंचक अन्य वचनों का पाठ करते हैं।

त्यजन्तु बान्धवाः सर्वे निन्दन्तु गुरवो जनाः।
तथापि परमानन्दो गोविन्दो मम जीवनम् ॥४०॥

सभी बन्धुजन त्याग दें, गुरुजन निन्दा करें, तथापि परम आनन्द रूप गोविन्द ही मेरा जीवन हैं।

सत्यं ब्रवीमि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहु-
र्यो यो मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति।
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा
पाषाणकाष्ठसदृशाय ददात्यभीष्टम् ॥४१॥

हे मनुष्यो ! मैं भुजा उठाकर सत्य वचन कहता हूँ—मृत्युकाल में अथवा रणभूमि में जो प्रतिदिन 'मुकुन्द नरसिंह जनार्दन' का जाप करता है, उस प्रस्तर अथवा काष्ठ के सदृश जड़वत् प्राणी को भी वे उसका अभीष्ट प्रदान करते हैं।

नारायणाय नम इत्यमुमेव मन्त्रं
संसारघोरविषनिर्हरणाय नित्यम् ।
शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽनुरागा
दुच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥४२॥

संसाररूपी विषम विष को दूर करने के लिए भव्य बुद्धि से सम्पन्न यति लोग "नारायणाय नमः'—इसी मन्त्र को अनुरागपूर्वक प्रतिदिन सुनें'—इस बात का मैं भुजा उठाकर उच्च स्वर से उपदेश देता हूँ ।

चित्तं नैव निवर्तते क्षणमपि श्रीकृष्णपादाम्बुजा-
न्निन्दन्तु प्रियबान्धवा गुरुजना गृह्णन्तु मुञ्चन्तु वा ।
दुर्वादं परिघोषयन्तु मनुजा वंशे कलङ्कोऽस्तु वा
तादृक्प्रेमधरानुरागमधुना मत्तायमानं तु मे ॥४३॥

प्रिय बन्धुजन निन्दा करें, गुरुजन स्वीकार करें अथवा त्याग दें, मनुष्य परिवाद की घोषणा करें अथवा वंश में कलंक हो, श्रीकृष्ण के चरणारविन्द से मेरा चित्त क्षणभर के लिए भी विमुख नहीं होता । अब तो मुझ पागल का उन प्रेमास्पद प्रभु में ऐसा अनुराग है ।

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमध्वं सदा
कृष्णेनाखिलशत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः।
कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहं
कृष्णे तिष्ठति विश्वमेतदखिलं हे कृष्ण रक्षस्व माम् ॥४४॥

तीनों लोकों के गुरु श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें। कृष्ण को सदा नमस्कार करो। कृष्ण के द्वारा समस्त शत्रु विनष्ट कर दिये गये हैं। उन श्रीकृष्ण को हमारा नमस्कार है। कृष्ण से ही यह जगत् उत्पन्न है। कृष्ण का मैं दास हूँ। कृष्ण में यह सम्पूर्ण विश्व स्थित है। हे कृष्ण ! मेरी रक्षा करो।

हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते
हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव।
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥४५॥

हे गोपालक ! हे कृपाजलनिधि ! हे सिन्धुकन्यापति ! हे कंसान्तक ! हे गजेन्द्र पर करुणा करने वाले ! हे माधव ! हे रामानुज ! हे तीनों लोकों के गुरु ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे गोपियों के नाथ ! मेरा पालन करो। तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसी को नहीं जानता।

दारा वाराकरवरसुता ते तनूजो विरिञ्चिः
स्तोता वेदस्तव सुरगणा भृत्यवर्गः प्रसादः।
मुक्तिर्माया जगदविकलं तावकी देवकी ते
माता मित्रं बलरिपुसुतस्तत्त्वदन्यं न जाने ॥४६॥

वारिधिपुत्री लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी है, पुत्र ब्रह्मा है, वेद तुम्हारी स्तुति-गान करते हैं। देवसमूह तुम्हारे सेवकवृन्द हैं, तुम्हारी कृपा मुक्ति है। सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी माया है। देवकी तुम्हारी माता है। बल राक्षस के रिपु इन्द्र का पुत्र अर्जुन तुम्हारा मित्र है। तुमसे भिन्न किसी अन्य को मैं नहीं जानता।

प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदु-
स्तदर्चनं पाणिफलं दिवौकसः।
मनःफलं तद्गुणतत्त्वचिन्तनं
वाचः फलं तद्गुणकीर्तनं बुधाः ॥४७॥

देवतागण, शीश की सार्थकता प्रभु को प्रणाम करने में और हाथों की सार्थकता प्रभु की अर्चना करने में मानते हैं। विद्वज्जन उनके गुण और तत्त्व-चिन्तन में मन की सार्थकता और उनके गुणानुगान में वाणी की सार्थकता बतलाते हैं।

श्रीमन्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं
के न प्राप्ता वाञ्छितं पापिनोऽपि ।
हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मि-
स्तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ॥४८॥

श्रीमन्नारायण नाम का उच्चारण करके कौन पापी भी अपने अभीष्ट को प्राप्त नहीं हुए ? किन्तु हाय ! पूर्वजन्म में हमारी वाणी उनके नाम के उच्चारण में प्रवृत्त नहीं हुई इसलिए हमने गर्भवास आदि दुःखों को प्राप्त किया ।

ध्यायन्ति ये विष्णुमनन्तमच्युतं
हृत्पद्ममध्ये सततं व्यवस्थितं ।
समाहितानां सतताभयप्रदं
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥४९॥

जो मनुष्य, हृदयकमल के मध्य में सतत विद्यमान और सम्यक् रूप से स्थित, व्यक्तियों को निरन्तर अभय प्रदान करने वाले अनन्त अच्युत विष्णु का ध्यान करते हैं, वे परम वैष्णवी सिद्धि को प्राप्त करते हैं ।

स त्वं प्रसीद भगवन्कुरु मय्यनाथे
विष्णो कृपां परमकारुणिकः खलु त्वम् ।
संसारसागरनिमग्नमनन्त दीन-
मुद्धर्तुमर्हसि हरे पुरुषोत्तमोऽसि ॥५०॥

ऐसे तुम भगवन् ! प्रसन्न होओ । मुझ अनाथ पर हे विष्णु ! कृपा करो। तुम तो परम करुणामय हो । संसार सागर में निमग्न दीन का हे अनन्त ! तुम्हें उद्धार करना चाहिए । हे हरि ! तुम पुरुषोत्तम हो ।

क्षीरसागरतरङ्गशीकरासारतारकितचारुमूर्तये ।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥५१॥

क्षीरसागर की तरंगों के जलकणों की तीव्र बौछार से मानो तारों से जटित मूर्ति वाले, शेष के फण की शैया पर शयन करने वाले, मधु असुर के शत्रु माधव को हमारा प्रणाम ।

अलमलमेका प्राणिनां पातकानां
निरसनविषये या कृष्ण कृष्णेति वाणी।
यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
करतलकलिता सा मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥५२॥

यह जो 'कृष्ण कृष्ण' वाणी है वह अकेली ही पापियों का पातक दूर करने में पूर्णतः सक्षम है। यदि मुकुन्द में आनन्द से घनीभूत भक्ति है तो मोक्षरूपी साम्राज्य-लक्ष्मी समझो हथेली पर धारण करली।

यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ कविलोकवीरौ
मित्रे द्विजन्मवरपार्श्वचरावभूताम्।
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन
राज्ञा कृता कृतिरियं कुलशेखरेण ॥५३॥

जिसके प्रिय, ज्ञानी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कवि और लोकवीर-मित्र पार्श्ववर्त्ती हुए, कमल के समान नेत्रों वाले मुकुन्द के चरणकमलों के प्रति भ्रमर की वृत्ति वाले उन राजा कुलशेखर के द्वारा इस कृति की रचना की गई।

मुकुन्दमालां पठतां नराणा-
मशेषसौख्यं लभते न कः स्वित्।
समस्तपापक्षयमेत्य देही
प्रयाति विष्णोः परमं पदं तत् ॥५४॥

मुकुन्दमाला का पठन करने वाले मनुष्यों को क्या सम्पूर्ण सौख्य की उपलब्धि नहीं होती ? समस्त पापों को क्षीण करके देहधारी जीव विष्णु के उस परम पद को प्रयाण करता है।

इति श्रीकुलशेखरकृता मुकुन्दमाला संपूर्णा ॥

परिशिष्ट—१

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में विष्णु के स्वरूप और लोक-कल्याण के हेतु उनके पृथ्वी पर अनेकानेक रूपों में अवतरण का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इन्हें चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करने वाला कहा गया है। इनके आयुधों में शार्ङ्ग धनुष प्रधान है। आभूषणों में पीताम्बर, वनमाला, किरीट, कुण्डल, श्रीवत्स एवं कौस्तुभमणि हैं। लक्ष्मी श्रीविष्णु की पत्नी हैं जिनके साथ ये अपने परमपद वैकुण्ठ में निवास करते हैं अथवा क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं। पृथ्वी का भार उतारने के लिए, दुष्टों का संहार करने के लिए, सज्जनों का परित्राण करने के लिए और धर्म एवं व्यवस्था बनाए रखने के हेतु वे इस भूमि पर पुनः-पुनः अवतार ग्रहण करते हैं और सभी आसुरी प्रवृत्तियों का विनाश करते हैं। विष्णु के इन्हीं गुण और विशेषताओं के आधार पर उनको विभिन्न नामों से अभिहित किया जाता है। प्रत्येक नाम उनके किसी विशेष गुण, स्वरूप अथवा कार्य विशेष का परिचय देता है। 'मुकुन्दमाला' में यद्यपि कवि ने विष्णु के देवकीपुत्र, गोपवेषधारी, बालकृष्ण रूप का ही प्रमुखतया चित्रण किया है किन्तु कृष्णरूप में अवतरित होकर की गई प्रायः सभी लीलाओं आदि का संकेत देने वाले साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करते हुए उन्हें विभिन्न सम्बोधनों से पुकारा है।

मुकुन्दमाला में प्रयुक्त एतद्विषयक विशेषणों, नामों आदि की सूची—अकारादि क्रम से प्रस्तुत है—

अच्युत
अधोक्षज
अनन्त
आनन्द
कंसान्तक
कृष्ण
केशव
कैटभारि
गजेन्द्रकरुणापारीण
गोपालक
गोपीजननाथ
गोविन्द
चक्रपाणि
चक्रायुध

जगत्त्रयगुरु
जगन्निवास
जनार्दन
त्रिधामन्
दामोदर
देवकीनन्दन
नन्दगोपतनय
नरकभिद्
नरकान्तक
नरसिंह
नागशयन
नारायण
पद्माक्ष
पुण्डरीकाक्ष
पुरुषोत्तम
भगवान्
भवलुण्ठनकोविद
भुवनपति
भोगिभोगशयन
मधुकैटभारि
मधुविद्विष्
माधव
मुकुन्द
मुरभिद्
मुररिपु
मुरारि
रामानुज
लीलाशेषजगत्प्रपञ्चजठर
लोकनाथ
वासुदेव
विश्वेश्वर
विष्णु
वैकुण्ठ
शार्ङ्गिन्
श्रीधर
श्रीनाथ
श्रीपद्मनाभ
श्रीराम
श्रीवल्लभ
सिन्धुकन्यापति
हरि

□□

परिशिष्ट-२

मुकुन्द— श्लोक-१—विष्णु का पर्याय; 'मुच्' धातु में 'कु' प्रत्यय लगाकर 'मुकु' शब्द की निष्पत्ति; जो 'निर्वाण' या 'मोक्ष' का वाचक है। जो देव निर्वाण प्रदान करें उन्हें मुकुन्द कहते हैं। अथवा 'मुकुम्' अव्यय—जिसका वेद-सम्मत अर्थ है—भक्ति-रस अथवा प्रेम; ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ११०, के आधार पर—विष्णु को 'मुकुन्द' कहते हैं क्योंकि वे विप्र-वर्ग को भक्ति अथवा प्रेम प्रदान करते हैं।

पीठ—श्लोक-१—उपवेशन आधार, ब्रह्मचारी का कुश घास से निर्मित आसन, देवता का अधिष्ठान जो धातु, पाषाण अथवा काष्ठ से ही निर्मित होना चाहिए। कृतयुग में दक्ष-यज्ञ में शिव-निन्दा को सुनकर प्राण त्यागने वाली सती की देह को कंधे पर उठाकर रौद्र रूप धारण करके जब शिव विचरने लगे तो विश्व में व्याप्त त्राहि-त्राहि को समाप्त करने के लक्ष्य से विष्णु ने चक्र द्वारा सती के अंगों को एक-एक कर काट गिराया। जिस-जिस स्थल पर ये अंग गिरे उन ५१ स्थलों पर विविध मंदिरों का निर्माण हुआ जिन्हें 'देवीपीठ' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

'**भवलुण्ठनकोविद**—श्लोक-२—'संसार का विनाश करने में प्रवीण' अर्थ में ध्वनि स्पष्ट है—विष्णु के संहारक अथवा रुद्र रूप की स्वीकृति है।

कृष्ण—श्लोक-३—अपनी महाप्रभाव शक्ति से शत्रुओं का विनाश करने के कारण कृष्ण कहलाते हैं—'कर्षत्यरीन् महाप्रभावशक्त्या'। भक्तों को आनन्दमय करके उन्हें आत्मसात् कर लेते हैं इसलिए कृष्ण; (कृष् आत्मसात् करने के अर्थ में) अथवा प्रलयकाल में समस्त सृष्टि को अपनी कुक्षि में समाहित कर लेते हैं इसलिए 'कृष्ण'; (कर्षति सर्व्वान् स्वकुक्षौ प्रलयकाले); अथवा 'कृषि' शब्द 'भू' (सृष्टि) का वाचक है, 'ण' निवृत्ति वाचक है, इन दोनों के ऐक्य के कारण परम-

ब्रह्म की कृष्ण संज्ञा है। सृष्टि एवं संहार दोनों कार्य सम्पन्न करने के कारण कृष्ण नाम सार्थक है। एक विशेष अवतार; जो भूमि का भार हरण करने के लिए द्वापर युग में भाद्रमास की कृष्ण अष्टमी की रात्रि को रोहिणी नक्षत्र में देवकी के गर्भ से आविर्भूत हुए। ये अवतार चौंसठ-कला युक्त पूर्णावतार है। 'कर्षति पापानि शरणागतानाम्'—परब्रह्म। शरणागतों के पापों को विनष्ट करते हैं, ऐसे हैं परब्रह्म श्रीकृष्ण।

द्वन्द्व—श्लोक-५—मिथुन; दो विरोधी गुणों का समूह यथा सुख-दुःख; जीवन-मृत्यु आदि।

नरकान्तक—श्लोक-७—नरक नामक असुर का वध करने के कारण 'कृष्ण' का एक विशेषण; नरक प्राग्ज्योतिषपुर का एक बलशाली दानव, यह भूमि का पुत्र होने के कारण 'भौम' कहलाया। इसकी माता भूदेवी ने विष्णु को प्रसन्न किया और पुत्र के लिए वैष्णव-अस्त्र प्राप्त कर लिया जिससे यह अपार बलशाली एवं अवध्य बना। हरिवंश पुराण के अनुसार 'नरक' ने देवमाता अदिति के कुण्डल चोरी किए; देवताओं ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की; उन्होंने प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण करके भयंकर युद्ध के उपरान्त 'चक्र' द्वारा उसका वध किया और अदिति के कुण्डल वापिस दिलवाए।

महाभारत के एक संदर्भ के अनुसार नरकासुर ने हाथी का रूप धारण कर विश्वकर्मा त्वष्टा की 'कशेरु' नामक चौदह वर्षीया कन्या का अपहरण किया। गन्धर्व, देवता एवं मनुष्यों की सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं का तथा सात अप्सराओं का अपहरण करके उन्हें अपने अन्तःपुर में रखा। इन्द्र का 'ऐरावत' हाथी और 'उच्चैः श्रवस्' अश्व भी उसने चुरा लिया। श्रीकृष्ण का भी इसने अपमान किया। फलतः सत्यभामा और इन्द्र को साथ लेकर गरुड़ पर आरूढ़ होकर प्राग्ज्योतिषपुर पहुंचकर 'कृष्ण' ने 'मुर' की चतुरंगिणी सेना को नष्ट कर, पाताल-गुफा में प्रवेश करके 'चक्र' द्वारा नरकासुर का वध किया।

पद्मपुराण के अनुसार नरकासुर ने घोर तपस्या एवं अध्ययन द्वारा तपःसिद्धि प्राप्त की। इन्द्र ने भयभीत होकर कृष्ण से नरकासुर का विनाश करने की प्रार्थना की। तब हथेली से प्रहार करके उसका विनाश करने के कारण कृष्ण को 'नरकान्तक' कहा गया।

मुरभिद्—श्लोक-१०; **मुररिपु**—श्लोक-२१; **मरारि**—श्लोक-२६—'मुर' नामक असुर का विनाश करने के कारण श्रीकृष्ण को मुरभिद् विशेषण से सम्बोधित किया जाता है। मुरासुर का शत्रु होने के कारण 'मुररिपु' तथा 'मुरारि' सम्बोधन मिले। 'मुर' नरकासुर का सेनापति था, इसने नरकासुर की प्राग्ज्योतिषपुर की सीमा पर छह हजार तीक्ष्ण पाश लगा कर रक्षा का प्रयास किया। कृष्ण ने इन पाशों को सुदर्शन चक्र द्वारा काटकर इसकी चतुरंगिणी सेना को नष्ट किया, और इसके सात पुत्रों सहित इसका वध किया।

वामन पुराण में उपलब्ध एक प्रसंग के अनुसार मुर ने तपस्या करके शिव से प्राप्त वरदान के आधार पर किसी के हृदय पर हाथ रखकर उसे नष्ट करने की क्षमता प्राप्त की। श्रीकृष्ण ने 'श्वेतद्वीप' में हुए युद्ध में इसे अपने ही हृदय पर हाथ रखने के लिए विवश किया और इस प्रकार इसका अन्त हुआ।

नारायण—श्लोक-११—ब्रह्माण्ड को फोड़कर निकले 'परम पुरुष' को पैर टिकाने के लिए जब कोई आश्रय नहीं मिला तो उन्होंने पवित्र जल की सृष्टि की। परम पुरुष 'नर' से उत्पन्न होने के कारण वह जल 'नार' कहलाया और एक सहस्र दिव्य वर्षों तक उस जल में अधिष्ठित होने के कारण भगवान् नारायण कहलाए। (भागवत पुराण २।१०।११)। यही भाव विष्णु पुराण के इस श्लोक में भी विद्यमान है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के कृष्णजन्म खण्ड (अध्याय १०६) के अनुसार समस्त प्राणियों की बुद्धि-रूपी गुहा में निवास करने के कारण शुद्ध चैतन्य-रूप विष्णु ही 'नारायण' हैं—'नराणां समूहो नारं तत्र अयनं यस्य स नारायणः।'

भूमा—श्लोक-१२—महान् निरतिशय,

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः॥

छान्दोग्य उपनिषद् (७।२३) के अनुसार जो भूमा है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं भूमा ही सुख है अतः 'भूमा' को ही विशेष रूप से जानना चाहिए। छान्दोग्योपनिषद् में ही 'भूमा' की व्याख्या इन शब्दों में की गई है—

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति
स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति
तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।

जहां व्यक्ति न तो कुछ और देखता है, न सुनता है, न जानता है वह महत् है, जहां कुछ और भी देखता है, सुनता है, जानता है वह अल्प है। जो महत् है वह अमृत या शाश्वत है, जो अल्प है वह नश्वर है। इस श्रुति वाक्य से विष्णु के 'विराट् पुरुष', 'ब्रह्म-नित्यत्व' और 'सत्व शुद्ध' रूप की परिकल्पना होती है।

'मुकुन्दमाला' के इस पद के 'भूमा' के सम्बन्ध में 'क्षुद्र. रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा' के 'कीटाः' का अर्थ मात्र आकार संकेतक है, किसी भी रूप में रुद्र-शिव अथवा पितामह-ब्रह्मा का अवमूल्यन अथवा अवमानना अभिप्रेत नहीं। 'भूमा' को विष्णु के संदर्भ में स्पष्ट करने का कवि-भक्त का प्रयास-मात्र है अतः श्री साधु सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा 'Tirupati Sri Venkatesvara' नामक ग्रंथ में की गई कुलशेखर की यह आलोचना उपयुक्त प्रतीत नहीं होती—

'Consequently the degradation of Rudra and Brahma by Kulasekhara Alvar by denouncing them as Ksudrah Kitah applies equally to Mukunda and solely to him in a way by holding Them in Himself; and, as such it is blasphemy of Mukunda. It would seem that Kulasekhara Alvar set aside his mind and intelligence as a convenient step and adopted the popular notion of the triad functionary gods to suit his purpose of demeaning Rudra and Brahma worshipped by other Communities and classes of people in the country.

कुलशेखर आळ्वार की 'मुकुन्दमाला' में 'भवलुण्ठनकोविद' द्वारा रुद्र पक्ष की स्वीकृति विद्यमान है। 'पेरुमाळ् तिरुमोळि' नामक तमिल कृति में भी किसी संदर्भ में 'विष्णु' को प्रतिष्ठित करने के लिए किसी अन्य शक्ति—ब्रह्मा, शिव अथवा किसी भी अन्य—की अवमानना नहीं है। अधिक से अधिक इस उक्ति को भक्त-हृदय का 'भावातिरेक' कहा जा सकता है।

त्रिधामन्—श्लोक-१३—विष्णु के नामों में से एक; 'त्रीणि भूरादीनि सत्त्वादीनि वा धामानि स्थानानि यस्य'—भू आदि अथवा सत्त्व आदि धाम या स्थान हैं

जिसके ऐसे तीनों लोकों के स्वामी विष्णु या श्रीकृष्ण; वामन रूप का संकेत अंतर्निहित है। बलि के वंचनार्थ विष्णु ने तीनों लोकों (भू, व्योम, स्वर्ग) का व्यापन किया और समस्त लोकों को अपने अधिकार में ले लिया। इसीलिए विष्णु को त्रिधामन्, त्रिजगतामेकाधिप (श्लोक-१८) जगत्त्रयगुरु (श्लोक-४५) आदि विशेषण दिये गए हैं।

नरकभिद्—श्लोक-१३—नरक नामक असुर का विनाशक होने के कारण कृष्ण का एक विशेषण; द्रष्टव्य है नरकान्तक पर टिप्पणी श्लोक-७।

याज्ञवल्क्य—श्लोक-१६—एक विख्यात आत्मज्ञ ऋषि, ये वाजसनेयी संहिता अथवा शुक्ल यजुर्वेद के रचयिता माने जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण के प्रणयन का श्रेय भी इन्हें दिया जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में इन्हें दार्शनिक समस्याओं के सर्वश्रेष्ठ आचार्य माना गया है। याज्ञवल्क्य संहिता के रचयिता। इस स्मृति का मनुस्मृति के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान है। उद्दालक आरुणि नामक आचार्य के शिष्य। इन्होंने बृहदारण्यक उपनिषद् में अत्यन्त प्रगतिशील विचार सरल भाषा में प्रस्तुत किए जो विश्व के दर्शन-साहित्य में अद्वितीय हैं। शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ईशावास्य उपनिषद् के नाम से विख्यात है।

माधव—श्लोक-२०—विष्णु के नामों में से एक। यदुपुत्र मधु की पुरुष संतान। 'मा' अर्थात् लक्ष्मी, 'धवः' अर्थात् पति—लक्ष्मीपति; अथवा मा—माया या विद्यामाया के पति 'माधव' अर्थात् विष्णु। ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड (अध्याय ११०) के अनुसार 'मा' को ब्रह्मस्वरूपा मूल-प्रकृति नारायणी कहते हैं जो विष्णु-माया के रूप में अथवा महालक्ष्मी, वेदमाता, सरस्वती, राधा, वसुन्धरा, गङ्गा नाम से विख्यात हैं—उनके स्वामी माधव।

महाभारत का (५/७०/४) एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

मौनात् ध्यानात् योगाच् च विद्धि भारत ! माधवम्।

हे अर्जुन ! मौन, ध्यान, योग के कारण से माधव को जानो।

केशव—श्लोक-२१—विष्णु अथवा कृष्ण का एक अभिधान।

क—ब्रह्मा, ईश—रुद्र, व—इन दोनों का आत्मरूप में विलय। प्रलयकाल में

उपाधिरूप इन तीनों मूर्तियों को त्यागकर एकमात्र परमात्म-स्वरूप से अवस्थित होना 'केशव' कहलाता है।

केशं अर्थात् केशिनं वाति अर्थात् हन्ति (केश+√वा+क प्रत्यय)। हरिवंश पुराण के अनुसार कृष्ण ने केशी नामक असुर का विनाश किया इसलिए वे 'केशव' कहलाए।

'क' अर्थात् 'जल'; 'शव' अर्थात् 'शयन'—प्रलयकाल में क्षीरसागर में शयन करने के कारण विष्णु को 'केशव' कहा गया।

सूर्यादि ज्योतियों में संक्रान्त केशसंज्ञक अंशुओं अर्थात् किरणों से युक्त होने के कारण—'केशव'—अर्थात् ज्योतिरूप—

अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिता:।
सर्वज्ञा: केशवं तस्मात् प्राहुर्म्मां द्विजसत्तमा:। (महाभारत)

अच्युत—श्लोक-२१—विष्णु का एक विशेषण। अच्युत शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ है 'नित्य'। 'न च्यवते स्वरूपतो न गच्छति य:' अर्थात् जो स्वरूप से च्युत नहीं होता, नष्ट नहीं होता। 'अनश्वर' होने के कारण विष्णु को अच्युत कहते हैं।

तुलसी—श्लोक-२१—भारत का पवित्र पौधा, वैष्णव धर्म में आस्था रखने वाले हिन्दू इसकी विशेष रूप से पूजा करते हैं और देवी रूप में इसे आदर देते हैं। कार्त्तिक मास की शुक्लपक्ष की द्वादशी को बालकृष्ण की प्रतिमा के साथ इसका विवाह सम्पन्न किया जाता है। इसे 'तुलसी-विवाह' कहते हैं। इस अवसर पर वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। वैष्णव-साधना में, तुलसी का विशेष महत्त्व है। प्राय: सभी आळ्वार भक्तों ने तुलसी-माला का उल्लेख विष्णु के संदर्भ में किया है।

अधोक्षज—श्लोक-२१—विष्णु का एक नाम; 'अध:' शब्द का अर्थ है अध: कृत अर्थात् अतिक्रान्त कर लेना। 'अक्ष' शब्द इन्द्रिय का पर्याय है। अक्षज का अभिप्राय है इन्द्रियजन्य ज्ञान से (अक्ष+√जन्+ड)। अत: अधोक्षज से तात्पर्य है—वह परमतत्त्व जिसने इन्द्रियजन्य ज्ञान को अतिक्रान्त कर लिया है; विष्णु का वह रूप जो इन्द्रिय ज्ञानातीत है।

पूर्तविधयः—श्लोक-२२—धार्मिक कृत्य; एक पारिभाषिक शब्द जिसकी परिभाषा मनुस्मृति में इस प्रकार से दी गई है—

वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते।

बावड़ी, कूप, जलाशय खुदवाना, देवालय बनवाना, अन्नदान करना; बाग लगवाना आदि कार्य 'पूर्त' कहलाते हैं। कुलशेखर आळ्वार के अनुसार नारायण के चरण-कमलों के स्मरण के बिना सभी धार्मिक कृत्य वृथा हैं।

अरण्यरुदितं—श्लोक-२२—जिस प्रकार निर्जन वन में रुदन व्यर्थ है, उसी प्रकार किसी कार्य की व्यर्थता सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त! 'वेदाभ्यास' भी प्रभु के चरणारविन्द की स्मृति के बिना अरण्य-रोदन के समान है।

गजस्नानं—श्लोक-२२—हाथी स्वभाववश नदी से बाहर आते ही पुनः अपनी सूंड से बाहर का कीचड़ अपने ऊपर फेंक लेता है अतः उसके स्नान का कोई प्रयोजन नहीं। किसी भी कार्य की व्यर्थता को सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त! कुलशेखर आळ्वार के अनुसार तीर्थों में स्नान को प्रभु-चरणों के प्रति आसक्ति के बिना व्यर्थ माना गया है।

लीलाशेषजगत्प्रपञ्चजठर—श्लोक-२४—विष्णु के विशेषण रूप में कुलशेखर ने इसका प्रयोग किया है। इसका अर्थ है 'लीला के द्वारा सम्पूर्ण जगत् प्रपंच को उदरस्थ करने वाले'। कल्पान्त में, प्रलयकाल में सम्पूर्ण सृष्टि को स्वयं में ही विलीन करके भगवान् विष्णु अपनी शेष-शय्या पर क्षीर-सागर में योग-निद्रा में लीन हो जाते हैं।

गोविन्द—श्लोक-२४—श्रीकृष्ण का एक पर्याय। भगवद्गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण को 'गोविन्द' नाम से सम्बोधित किया है।

किं नो राज्येन गोविन्द! (गीता १/३२)

विन्द् धातु से 'श' प्रत्यय लगाकर 'विन्द' शब्द की व्युत्पत्ति है जिसका अर्थ है पालक एवं स्वामी। गां पृथ्वीं धेनुं वा विन्दतीति गोविन्दः। अर्थात् गां—पृथ्वी अथवा धेनु—उसका जो पालनकर्ता है अथवा स्वामी है वह गोविन्द कहलाते हैं।

गो समूह का अधिपति अथवा पालक होने के कारण कृष्ण को गोविन्द अर्थात् गोपालक कहते हैं।

'गो' शब्द वाणी के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इस अर्थ में वेदान्तवाक्य रूपी वाणी से तत्त्वज्ञ पुरुष जिनका ज्ञान प्राप्त करते हैं उन परम पुरुष को गोविन्द कहते हैं। (गोभिर्वाणीभिर्वेदान्तवाक्यैर्विद्यते योऽसौ परमपुरुषः। हरिवंश, विष्णु-पर्व ७५/४३-४५)।

महाभारत के अनुसार वराहरूपी विष्णु ने सागर के भीतर से पृथ्वी (गो) का उद्धार किया इसलिए वे गोविन्द कहलाए। यही भाव ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के प्रकृतिखण्ड—२४ के निम्न श्लोक में उपलब्ध है—

युगे युगे प्रणष्टां गां विष्णो! विन्दसि तत्त्वतः।
गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसे ऋषिभिस्तथा॥

मधुकैटभारि—श्लोक २६; **मधुविद्विष्**—श्लोक ५१; **कैटभारि**—श्लोक-२९ दो प्रसिद्ध असुर—'मधु' और 'कैटभ' के संहारक विष्णु का एक नाम। देवी भागवत के अनुसार इन दो असुरों की उत्पत्ति विष्णु के कान के मैल से हुई। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार ये ब्रह्मदेव के स्वेद से उत्पन्न हुए। पद्मपुराण के अनुसार ब्रह्मा के तमोगुण से इन दो असुरों का जन्म हुआ। महाभारत के शांति पर्व में उल्लेख है कि भगवद्-प्रेरणा से विष्णु के नाभिकमल पर रजोगुण और तमोगुण की प्रतीक जल की दो बूंदें पड़ीं। विष्णु ने उनकी ओर देखा और एक 'मधु' तथा दूसरी 'कैटभ' हुई। अपने तप द्वारा इन्होंने अजेयत्व प्राप्त कर लिया। अपने आसुरी स्वभाव के अनुसार इन्होंने जब अत्याचार प्रारम्भ किए और ब्रह्मा को भी मारने के लिए उद्यत हुए तो युद्ध द्वारा न मारे जाने पर विष्णु ने इन्हें मोहित कर इनसे ही इनकी मृत्यु का वर मांगा। पद्मपुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि के अनुसार इन्हें अपनी गोद में लेकर विष्णु ने इनका वध किया। मार्कण्डेय पुराण तथा हरिवंश पुराण के अनुसार योग-निद्रा से जागकर अपनी जंघा पर रखकर अत्याचार करने वाले 'कैटभ' राक्षस का वध किया। इस संदर्भ में अनेक प्रासंगिक कथाएं इन पुराणों में उपलब्ध हैं।

वासुदेव—श्लोक-२९—वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण, (वसुदेवस्यापत्यं पुमान्। वसुदेव+अण्)। ब्रह्मवैवर्त पुराण एवं विष्णु पुराण के अनुसार ये सभी प्राणियों

में और सभी प्राणी इनमें निवास करते हैं अतः विद्वान् इन्हें 'वासुदेव' कहते हैं। 'विश्वम्भर होने के कारण आत्मरूप से ये सर्वत्रनि वास करते हैं।' इसलिए इन्हें वासु (वस्+उण—वासु) और देव, अर्थात् श्रीकृष्ण—अतः वासुदेव। महाभारत (५/७०/३) के अनुसार—

वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वात् देवयोनितः।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्वात् विष्णुरुच्यते ॥

अहिर्बुध्न्यसंहिता के अनुसार जो अंतिम सत्ता, अनन्त, शाश्वत, नाम-रूपरहित, वाणी और मन से परे तथा अविकारी है, उस परिपूर्ण, अव्याकृत को परमात्मा, भगवान्, वासुदेव, आदि कई नामों से पुकारा जाता है। 'नारायण', परब्रह्म समग्र विरोधों का चरम अवसान है। जगत् व्यापार के लिए कल्पित छह गुण हैं—ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, तेज। इन छह गुणों में से दो-दो की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि होती है—संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। 'संकर्षण' व्यूह में ज्ञान तथा बल गुणों का प्राधान्य, 'प्रद्युम्न' में ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणों का प्राधान्य तथा 'अनिरुद्ध' में शक्ति और तेज गुणों का प्राधान्य रहता है। 'वासुदेव' को मिलाकर भगवद्व्यूह 'चतुर्व्यूह' कहलाता है। महासनत्कुमार संहिता के अनुसार 'वासुदेव' अपने मन से शुक्ल देवी शान्ति को उत्पन्न करते हैं। इस सिद्धान्त द्वारा भिन्न रूप से व्यूहों की संरचना और उनके कार्य-क्षेत्र का उल्लेख हुआ है। जयाख्य संहिता के अनुसार भगवान् 'वासुदेव' से अच्युत, सत्य और पुरुष तीन की उत्पत्ति होती है। 'वासुदेव' की विस्तृत परिचयात्मक सामग्री समस्त पाञ्चरात्र साहित्य में भी उपलब्ध है।

दामोदर—श्लोक-२९—दम आदि साधना के द्वारा उत्कृष्ट (उदार) मति अथवा बुद्धि सेयुक्त व्यक्तियों द्वारा गम्य होने के कारण विष्णु को दामोदर कहा जाता है। (दमादिसाधनेनोदारा उत्कृष्टा मतिर्या तया गम्यते इति दामोदरः)।

महाभारत में प्राप्त एक विवरण के अनुसार यशोदा ने कृष्ण को दाम अर्थात् रस्सी से उदर में बांधा था इसलिए वे दामोदर कहलाए। (दाम रज्जु उदरे यस्य सः)।

अथवा विष्णुसहस्रनाम के शाङ्करभाष्य के अनुसार दाम शब्द का अर्थ है लोक। प्रलयकाल में सभी लोकों को उदरस्थ करके विष्णु क्षीरसागर में शेषशय्या पर योगनिद्रा में लीन हो जाते हैं इसलिए इनको दामोदर कहा जाता है।

पद्मनाभ—श्लोक-२६—'विष्णु' का एक नाम। पद्मं नाभौ यस्य (पद्मनाभि+अच्) ब्रह्मा की उत्पत्ति के कारणीभूत पद्म के विष्णु की नाभि से उत्पन्न होने के कारण विष्णु को पद्मनाभ कहते हैं।

अनन्त—श्लोक-३०—विष्णु के लिए प्रयुक्त एक विशेषण। (नास्ति अन्तः विनाशो यस्य सः) जिसका अन्त अथवा विनाश नहीं होता उसे अनन्त कहते हैं। प्रलय के समय समस्त सृष्टि का विनाश हो जाने पर केवल विष्णु ही शेष रह जाते हैं। जिनकी कोई सीमा (अन्त) नहीं, ऐसे असीम, अन्तरहित अनवधि हैं विष्णु।

वैकुण्ठ—श्लोक-३०—श्रीकृष्ण का एक नाम। चाक्षुष मन्वन्तर में पुरुषोत्तम ने शुभ्र की पत्नी विकुण्ठा के द्वारा जन्म लिया; इसलिए वैकुण्ठ कहलाये। (विकुण्ठायाः अपत्यं पुमान् वैकुण्ठः)

चाक्षुषस्यान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठे देवतैः सह ॥ (विष्णु पुराण)

अथवा 'कुण्ठा' शब्द का अर्थ है 'माया'। विविध प्रकार की माया है जिनकी, उन्हें 'वैकुण्ठ' कहते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में उपलब्ध एक विवरण के आधार पर सृष्टि के आदि में विशिष्ट भूतों को परस्पर संश्लिष्ट करते हुए उनकी गति कुण्ठित करने के कारण विष्णु को वैकुण्ठ नाम दिया गया है।

जनार्दन—श्लोक-३०—विष्णु। (जन+अर्द्+ल्यु) समुद्र में रहने वाले 'जन' नामक असुरों का संहार करने के कारण विष्णु को 'जनार्दन' कहते हैं। अथवा 'जन' अर्थात् लोगों के द्वारा पुरुषार्थ के लिए जिससे याचना की जाए वह 'जनार्दन' (अर्द् धातु याचना के अर्थ में प्रयुक्त)। जन—जन्म, अर्दन—हनन; भक्त के लिए मुक्ति प्रदायक होने के कारण, भक्त के जन्म का विनाश करते हैं अतः इन्हे 'जनार्दन' कहा जाता है। जन—लोक, 'हर' रूप से लोकों का संहार करने के कारण; जनार्दन। अथवा ब्रह्मारूप में लोकों की सृष्टि करने के कारण 'जन' और 'हर' रूप में सृष्टि का संहार करने के कारण 'अर्दन'—'जन' और 'अर्दन' का सम्मिलित रूप 'जनार्दन' हुआ। अथवा पालक होने के कारण रक्षा के हेतु लोक में अवतरित होने वाले 'जनार्दन' कहलाए।

नरसिंह—श्लोक-४१—विष्णु—जो नर भी हैं और सिंह भी; विष्णु के दशावतारों में से चतुर्थ पूर्ण अवतार। सिंह का मुख, रक्तिम नेत्र, अर्द्धशरीर मनुष्य का—ऐसा रूप धारण कर महाविष्णु का अवतार हुआ। हिरण्यकशिपु नामक एक राक्षस ने घोर तपस्या द्वारा ब्रह्माजी से अमरत्व का वर प्राप्त किया। उसके अत्याचार से जब सर्वत्र घोर आतंक व्याप्त हो गया तो प्रह्लाद के संरक्षण के लिए, देवताओं को अभय प्रदान करने के लिए, यह नृसिंह अवतार हुआ। इस कथा के अनेक रूप पुराणों में उपलब्ध हैं। विष्णु पुराण, पद्मपुराण, वायुपुराण, अग्नि, पुराण-कूर्म पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण आदि में हिरण्यकशिपु के अत्याचार, प्रह्लाद का भक्तिभाव तथा नृसिंह रूप में प्रभु का अवतार वर्णित हुआ है। यत्किञ्चित् भेद के साथ मूल कथा प्रायः एक समान है।

गजेन्द्रकरुणापारीण—श्लोक-४५—कुलशेखर ने श्रीकृष्ण को गजेन्द्रकरुणापारीण का विशेषण देकर सम्बोधन किया है। यह विशेषण भगवान् की भक्तवत्सलता का परिचायक है। भक्त के दुःख से कातर हो भगवान् उसकी दुःखनिवृत्ति के हेतु दौड़े आते हैं। गजेन्द्रमोक्ष इसका बहुत सुन्दर उदाहरण है। पौराणिक कथा इस प्रकार है—

त्रिकूट पर्वत के निकट एक विशाल सरोवर था। ग्रीष्मसन्तप्त एवं तृषार्त गजेन्द्र स्नान करने एवं जल पीने के लिए उस सरोवर में उतरा। उस सरोवर में रहने वाले ग्राह ने गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया। दोनों में घोर युद्ध हुआ। सम्पूर्ण शक्ति से प्रयास करने पर भी जब गजेन्द्र ग्राह से मुक्ति न पा सका तब उसने श्रीकृष्ण को मनुष्य की भांति आर्त स्वर से पुकारा। गजेन्द्र की करुण पुकार से द्रवित श्रीकृष्ण अपने भक्त की रक्षा के हेतु आविर्भूत हुए। ग्राह सहित गजेन्द्र को सरोवर से बाहर लाकर अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह का वध करके गजेन्द्र को मुक्त किया। (भागवत पुराण ८/२-४)

विष्णु—श्लोक-४६—'बृहत्वाद् विष्णुरुच्यते' के आधार पर अपने विशाल रूप के कारण भगवान् 'विष्णु' कहलाते हैं अथवा 'वेवेष्टि व्याप्नोति विश्वं यः'—जो सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं, इस कारण से 'विष्णु'।

अथवा 'विष्णाति वियुनक्ति भक्तान् मायापसारणेन संसारादिति'—'माया' को हटाकर भक्तों को इस संसार से मुक्त करने वाले होने के कारण 'विष्णु'

कहलाते हैं। अथवा 'विशति सर्वभूतानि विशन्ति सर्वभूतानि अत्र' के आधार पर जो सब प्राणियों में और सर्वप्राणी जिनमें प्रविष्ट हैं—ऐसे होने के कारण 'विष्णु' कहलाए। अथवा 'विश्' धातु का प्रयोग प्रवेश करने के अर्थ में होता है इस अर्थ में—क्योंकि यह सम्पूर्ण विश्व उन महापुरुष की शक्ति से विद्यमान है—इसलिए वे भगवान् विष्णु कहलाते हैं।

□□



डॉ० रवीन्द्रकुमार सेठ

साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावात्मक एकता के प्रबल समर्थक एवं पिछले लगभग २० वर्षों से निरंतर आस्थापूर्ण साधना के मार्ग पर अग्रसर डॉ० रवीन्द्र कुमार सेठ हिन्दी, तमिल, संस्कृत एवं पंजाबी के परिचित विद्वान् हैं। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से ई० १९६४ में आधुनिक भारतीय भाषाएं(संयुक्त पाठ्य-क्रम, हिन्दी, तमिल, संस्कृत) में एम० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। आपका प्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'तिरुवलुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन' तुलनात्मक साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धियों में से है।, प्रकाशन विभाग' द्वारा प्रकाशित 'तिरुक्कुरल' तथा संस्कृत नीति के बृहद् संकलन एवं हिन्दी अनुवाद 'नीति-मुक्तावली' के लेखक डॉ० रवीन्द्र सेठ की 'सुब्रह्मण्य भारती' नामक कृति ने राष्ट्रकवि भारती की जन्मशती के अवसर पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सर्वत्र इस कृति को भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और राष्ट्रीय स्तर पर बनी शताब्दी समिति द्वारा इसको योजना में समाविष्ट किया गया। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों एवं सम्मेलनों में ख्याति-प्राप्त डॉ० सेठ बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न कर्मठ व्यक्ति हैं। आप दिल्ली के विख्यात एवं प्राचीन हरदयाल पुस्तकालय के अवैतनिक सचिव तथा विभिन्न स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। संप्रति पी० जी० डी० ए० वी० (सांध्य) कॉलिज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक तथा 'बर्सर' के रूप में कार्य कर रहे हैं।

'भक्ति की प्रारम्भिक कृति –मुकुन्दमाला' तथा 'तमिल वैष्णव कवि—आळ्वार' उनकी नवीनतम कृतियां हैं जो राष्ट्र की भक्ति-परम्परा को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का एक प्रशंसनीय प्रयास है।





डॉ० रवीन्द्रकुमार सेठ

साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावात्मक एकता के प्रबल समर्थक एवं पिछले लगभग २० वर्षों से निरंतर आस्थापूर्ण साधना के मार्ग पर अग्रसर डॉ० रवीन्द्रकुमार सेठ हिन्दी, तमिल, संस्कृत एवं पंजाबी के परिचित विद्वान् हैं। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से ई० १९६४ में आधुनिक भारतीय भाषाएँ (संयुक्त पाठ्यक्रम, हिन्दी, तमिल, संस्कृत) में एम०ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। आपका प्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'तिरुवल्लुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन' तुलनात्मक साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धियों में से है। 'प्रकाशन विभाग' द्वारा प्रकाशित 'तिरुक्कुरल' तथा संस्कृत नीति के बृहद् संकलन एवं हिन्दी अनुवाद 'नीति-मुक्तावली' के लेखक डॉ० रवीन्द्र सेठ की 'सुब्रह्मण्य भारती' नामक कृति ने राष्ट्रकवि भारती की जन्मशती के अवसर पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सर्वत्र इस कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है और राष्ट्रीय स्तर पर बनी शताब्दी समिति द्वारा इसको योजना में समाविष्ट किया गया। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों एवं सम्मेलनों में ख्याति प्राप्त डॉ० सेठ बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न कर्मठ व्यक्ति हैं। आप दिल्ली के विख्यात एवं प्राचीन हरदयाल पुस्तकालय के अवैतनिक सचिव तथा विभिन्न स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। संप्रति पी०जी०डी०ए०वी० (सांध्य) कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक तथा 'बर्सर' के रूप में कार्य कर रहे हैं।

'भक्ति की प्रारम्भिक कृति—मुकुन्दमाला' तथा 'तमिल वैष्णव कवि-आळ्वार' उनकी नवीनतम कृतियाँ हैं जो राष्ट्र की भक्ति परम्परा को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का एक प्रशंसनीय प्रयास है।